हमने इस्लाम कैसे क़ुबूल किया?

लेखक

इम्तियाज़ अहमद

मुहाजिर मदीना अल मुनव्वरा

एम॰ एस॰ सी॰ एम॰ फिल॰ (लंदन)

अनुवाद

डॉ॰ शकील अहमद फारूक़ी

समीक्षक

आईशा फ़ौज़िया

ISLAMI

इस्लामी किताब घर

2861, कूचा चेलान, दरिया गंज

नई दिल्ली 110002

फ़ोन : 08010149415, 09210049474

© All right reserved
Copyright reserved with the publisher & no part of this publication be reproduced by any means without the prior consent of the publisher

किताब का नाम :

हमने इस्लाम कैसे क़ुबूल किया?

इम्तियाज़ अहमद
मुहाजिर मदीना मुनव्वरा
Author : Imtiaz Ahmad
Citizenship : American
Degrees : M. Sc. M. Phil (London)
Experience : * Head of Physics Department, Government. Degree College, Islamabad Pakistan
* Principal, Islamic Schools in America.
* Founder of Tawheed Masjid, Detroit, Michigan, U.S.A.
* Founder of Tawheed Masjid Farmington Hills, Michigan, U.S.A.
* Ex-Member, Majlis Shura, Islamic Society of North America.
* Consultant, Arabia Advanced System, Saudi Arabia
Address : P.O. Box 4321, Madina Munawwarah, Saudi Arabia
e-mail : mezaan22@hotmail.com
website : www.imtiazahmad.com

1st Edition : 2011
Copies : 3100
ISBN NO. 81-88455-97-3

प्रकाशक

इस्लामी किताब घर

2861, कूचा चेलान, दरिया गंज
नई दिल्ली 110002
फ़ोन : 08010149415, 09210049474
E-mail: islamikitabghar@hotmail.com
Website:www.islamikitabghar.com

अनुक्रमाणिका

1	प्रस्तावना	5
2	विशेष परिचय	7
3	दो शब्द अनुवादक के	8
4	अब्दुल्लाह (Abdullah) (एक अमरीकी फ़ौजी का क़ुबूले इस्लाम)	9
5	जेम्स अबीबा (James Abiba) (एक अमरीकी विद्यार्थी और उसकी इस्लाम की खोज)	18
6	कैथी (Kathy) (क़ुरआन का अनुवाद पढ़कर एक अमरीकी महिला का क़ुबूले इस्लाम)	23
7	रेहाना (Rehana) (एक अमरीकी नवमुस्लिम महिला का इस्लामी तौर-तरीक़े से लगाव)	26
8	इमाम सिराज वहाज (Imam Siraj Wahaj) (एक अमरीकी मुस्लिम लीडर; अल्लाह का शेर)	31
9	सूज़ैन (Suzan) (एक अमरीकी महिला की इस्लामी शिक्षण से मोहब्बत)	35
10	डॉ॰ नजात (Dr. Najat) (एक हिन्दू डॉ॰ का क़ुबूले इस्लाम और क़ौम के लिए निःस्वार्थ सेवायें)	40
11	जिम (Jim) (जिम और उसकी बौध्द् गर्लफ्रेन्ड का इस्लाम की तरफ़ सफ़र)	46
12	रेन्डा टोशनर (Renda Toshner) (एक तुर्की-अमरीकी आर्कीटेक्ट)	51
13	डोनाल्ड फ़्लड (Donald Flood) (एक अंग्रेज़ी भाषा का अमरीकी उस्ताद	57
14	जो पाउल ईचान (Joe Paul Echon) (एक फ़िलिपिनी कम्पयूटर इंजीनियर)	69

15	इब्राहीम सुलेमान (Ibrahim Suleman) (नाइजेरिया का एक धार्मिक विद्यार्थी)	89
16	जैनेट रोज़(Janet Rose) (कैनेडा की एक टीचर)	93
17	मरयम (Maryam) (चर्च नेता की बेटी का इस्लाम धर्म में प्रवेश)	96
18	एक हिन्दू लेड़ी (महिला) डॉकटर का इस्लाम में प्रवेश	105
19	क़ुरआनी आयात	118
20	कुछ पत्र प्रशंसको के	120

प्रस्तावना

मैं 26 वर्ष अमरीका में रहा हूँ। इस बीच मुझे बहुत से अमरीकी मुस्लिमों को व्यक्तिगत तथा पारिवारिक रूप से मिलने की सुविधा तथा सम्मान प्राप्त हुआ है। यह मेरे लिये बड़ा फायदेमंद साबित हुआ है और इसने मेरे विश्वास को मज़बूत बनाया है। मैं स्वीकार करता हूँ कि अमरीका के दूसरे परवासियों की तरह मैं अमरीका में आकर एक अच्छा व्यवहारिक (Practising) मुसलमान बना हूँ, जब कि मैं अपने देश में ऐसा नहीं था। इस कारण अधिकतम लोगों की मालूमात (Knowledge) तथा उनका अमल (Practice) मुझ से बेहतर है।

इस किताब में जिन अमरीकी नव-मुस्लिमों की कहानी बयान की गयी है वे अधिकतर साधारण लोग हैं। उनके मुसलमान बनने के बाद उनके व्यवहार देखकर बहुत लोगों ने इस्लाम क़ुबूल किया है। इस्लाम की दावत ने अमरीकी सोसायटी में भी कुछ कारनामे दिखायें हैं, मिसाल के तौर पर खूँखार क़ैदियों ने इस्लाम क़ुबूलियत के बाद एक शांतिपूर्ण ज़िन्दगी गुज़ारनी शुरू कर दी।

मैं मेरीलैंड (Maryland) के एक पब्लिक स्कूल में गणित (Mathematics) पढ़ा रहा था। अध्यापन बहुत ही मेहनत का काम है। बहुत से अध्यापक थक जाते हैं। यह एक रिवाज सा बन गया था कि परीक्षा के बाद गणित विभाग की सभी फैकल्टी के सदस्य एक साथ खाना (lunch) खाते हैं। हम इसे समाजिक (unwinding process) घटना कहते थे। हम एक प्रकार का भोजन पकाते हैं इसको स्लोपी जोय (sloppy joe) कहते हैं यह ग्राउंड बीफ (ground beef) का बनता है, जिसमें टमाटर की चटनी और हल्की मिर्च पड़ती है। यह हमारे विभाग के धीमे कुकर पर बनता है। मेरे साथियों को स्लोपी जोय (sloppy joe) बहुत पसंद था। मैंने ज़ोरदार आवाज़ में कहा अबकी बार मैं ग्राउंड बीफ लाऊँगा। सभी सहमत हुये, इस

दूसरे लंच के समय मैने अपने एक साथी से बहुत ही सार्थक बातचीत की, उसका नाम था सिंडी (Cindy) और वह यहूदी थी। मैने बातचीत के बीच उस से कहा कि क्या तुम अपने आप को भाग्यशाली नहीं समझती कि मैं ग्राउंड बीफ लाया हूँ जिसे खाने की आज़ादी हम दोनो को है? उस ने कहा कि अहमद मैं ख़राब यहूदी हूँ, मैं सुअर का मास भी खाती हूँ।

हम दोनो की दिलचस्पी रियल स्टेट (real estate) में थी और हम दोनो के पास इस का लाइसेंस था। वह रियल स्टेट की दलाल थी जिसका मालिक उस का पति था। उसने मुझसे कहा इस समय बाज़ार काफी अच्छा है। उस ने कहा कि उसका पति मिलेट्री कर्नल है तथा पेंटागन में काम करता है। इसी बातचीत के दौरान मैंने उसे कहा, सिंडी तुम शाम को बास्केट बाल तथा दूसरे खेलों के समय दिखाई नहीं देती? उसने साहस के साथ कहा, स्कूल वाले मुझे यह काम करने के लिये बाध्य नहीं कर सकते हैं क्योंकि मैं अपने तथा पड़ोसियों के बच्चों को हफ्ते में तीन दिन हेबरो शाला (Hebrew School) ले जाती हूँ। यह प्रतिदिन की धार्मिक प्रार्थना के अलावा है। मैं यह काम बिना पैसे के कई साल से कर रही हूँ।

इसने मुझे अचंभित कर दिया। मैने अपने आपसे कहा! यह जवान औरत पूरे दिन की अध्यापिका है, रोज़ 45 मिनट आने तथा 45 मिनट जाने में कार चलाती है। तथा यह पार्ट टाईम रीयल स्टेट का काम भी करती है। इसके अतिरिक्त वह घर का तथा समाजिक काम भी करती है। फिर भी वह समय निकाल लेती है कि रज़काना तौर पर बच्चों को लेकर Hebrew School जाती है, और फिर भी अपने आपको ख़राब यहूदी कहती है।

मैंने अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने के लिए इधर- उधर घूमना शुरू किया, कि अगर कोई मेरी या मेरे साथी जो अपने आप को अच्छा मुस्लिम मानते हैं, की ज़िम्मेदारियाँ हैं, वह पूरी हों।

अल्लाह हमें ताक़त दे, विश्वास दे तथा काम ले।

इम्तियाज़ अहमद,

मुहाजिर मदीना मुनव्वरा, जून 2002

विशेष परिचय

सुलझी सोच रखने वाले गैर-मुस्लिम पंडितों का भी मानना है कि इस्लाम धर्म के शिक्षण के ख़िलाफ़ भेद-भाव की भावना बहुत आम हो चुकी है। इसी वजह से अधिकतर लोग इस्लाम के असली रूप से अनजान हैं। दूसरी बात यह है कि कुछ शक्तियाँ इस कोशिश में लगी हुई हैं कि सच्चाई में फेरबदल करके इस्लाम की राह से लोगों को गुमराह करें। मगर इस्लाम इतना कमज़ोर नहीं है क्योंकि इस सब की रक्षा ख़ुद अल्लाह कर रहा है।

किसी शायर ने क्या ख़ूब कहा है :

इस्लाम की फ़ितरत में क़ुदरत ने लचक दी है
इतना ही ये उभरेगा जितना कि दबादोगे।

सच्चाई तेज़ रफ़्तार से फैल रही है। दुनिया के हर कोने में लोग व्यक्तिगत और परिवारिक रूप से इस्लाम धर्म में शामिल हो रहे हैं। कुछ ऐसे ही लोगों की कहानी इस किताब में है। इन कहानियों से यह भी मालूम होता है कि किसी को इस्लाम धर्म में ज़ोर ज़बरदस्ती से शामिल करने की इजाज़त नहीं है।

इस किताब में दिये गये उदाहरणों से मालूम होता है कि सच्चाई की खोज में कैसी-कैसी बाधाएं आती हैं और दोस्तों और रिश्तेदारों का सामना करना कितना मुश्किल हो जाता है। मगर सच्चाई की मिठास इन तमाम मुश्किलों पर हावी हो जाती है।

ये तमाम कहानियाँ मेरे व्यक्तिगत इन्टरव्यू का नतीजा हैं जो मैंने हर नये मुस्लिम से ख़ुद मिलकर लिया है। इन लोगों से मेरी मुलाक़ात मदीना मुनव्वरा में पिछले कुछ सालों के अरसे में हुई है। उनके ताज़े और मज़बूत ईमान ने मुझे बहुत प्रभावित किया है।

इम्तियाज़ अहमद
मदीना मुनव्वरा

दो शब्द अनुवादक के

इस संसार में इन्सानों के मार्गदर्शन और रहनुमाई के लिए हमेशा कुछ ऐसे पवित्र आत्मा लोग पैदा होते रहे हैं जो समय समय पर अपनी कथनी और करनी के बल पर मनुष्यों को साफ़ सुथरी ज़िन्दगी गुज़ारने के लिये सीधी और सच्ची राह दिखाते रहते हैं। इन्हीं लोगों में एक इन्सान उभर कर सामने आया जिसे दुनिया ''इम्तियाज़ अहमद'' के नाम से पहचानती है।

वैसे तो मेरी मुलाक़ात इम्तियाज़ साहब से पहली बार रमज़ान (सन् 2001) महीने में हुई, लेकिन उनकी लिखी हुई कुछ किताबें मेरी नज़र से पहले ही गुज़र चुकी थीं।

इन किताबों में एक किताब थी (How Islam Touched their Hearts?) (अमरीकी नव मुस्लिमों की सच्ची कहानियाँ)। इस में लेखक ने अपनी अमरीकी ज़िन्दगी के कुछ अनमोल अनुभव बयान किये हैं। इन सच्ची कहानियों के अध्ययन से समझ में आया कि किस तरह आज भी इन्सान सच्चाई की तलाश में प्रयत्नशील है। साथ में यह बात भी साफ़ हो गई कि हम मुसलमानों पर एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी यह है कि इस्लाम की सच्चाई को दूसरों तक पहुँचायें।

इस किताब का अनुवाद बहुत सी भाषाओं में हो चुका है। इम्तियाज़ साहब ने जब मुझ से इसे हिन्दी में अनुवाद करने के लिए कहा तो मैंने तुरन्त हाँ कह दिया। क्योंकि इस भारत देश में हिन्दी ही एक मात्र ऐसी भाषा है जिसके ज़रिये इन सच्ची कहानियों को ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पहुंचाया जा सकता है।

काम आसान न था मगर अल्लाह की मदद मिलती गई और मैं धीरे-धीरे इस बड़ी ज़िम्मेदारी से फ़ारिग़ हो गया। अनुवाद के सफ़र में अल्लाह ने मेरी मदद के लिए बहुत-से नेक लोगों को प्रोत्साहित किया। जिन का मैं आभारी हूँ।

डॉ॰ शकील अहमद फ़ारूक़ी

अब्दुल्लाह

(Abdullah)

(एक अमरीकी फ़ौजी का क़ुबूले इस्लाम)

जब अब्दुल्लाह साहब से मेरी पहली मुलाक़ात हुई, उस वक़्त उनकी उमर करीब 25 साल की थी। हाई स्कूल तक पढ़ाई करने के बाद वह अमरीकी फ़ौज में भर्ती हो गये और यहीं पर उन्हों ने थोड़ा बहुत टेक्निकल (Technical) काम भी सीख लिया। अब वह फ़ौज से मुक्त (Discharge) होकर फ़ोटोकॉपी और फ़ैक्स मशीनों की मरम्मत का काम करते हैं जिससे अपना और अपने परिवार वालों का पेट पालते हैं।

अब्दुल्लाह साहब ने इस्लाम धर्म कैसे और क्यों स्वीकार किया, यह एक दिलचस्प कहानी है। लेकिन उन्होने अपने आपको जिस तरह इस नये मज़हब के रंग-ढंग में ढाला है, यह दिलकश ही नहीं बल्कि हम सबके लिए एक सबक़ भी है।

1990 की बात है, जब युनाईटेड फोर्स और इराक़ के बीच जंग (Gulf War) का ऐलान हुआ तब अब्दुल्लाह साहब अमरीकी फ़ौज के साथ सऊदी अरब आये; और एक दिन ज़रूरत की चीज़ें ख़रीदने के लिए बाज़ार गये। उन्होंने दुकानदार से एक चीज़ की क़ीमत तय की और अभी पैसे देने ही वाले थे कि क़रीब की मस्जिद से अज़ान की आवाज़ आई; अज़ान सुनते ही दुकानदार ने पैसे लेने से इन्कार कर दिया और उनके सवाल के जवाब में सिर्फ इतना कहा ''बस'', और अपनी दुकान बंद करके मस्जिद चला गया। अब्दुल्लाह साहब का कहना है कि ''मैं वहाँ हक्का-बक्का खड़ा रह गया, यह बात मेरी समझ में नहीं आई जब मैंने उस चीज़ के पैस तय कर लिये थे और पैसे देने को ही था तो उस दूकानदार ने मुझसे पैसे लेने से इन्कार क्यों कर दिया?'' अब्दुल्लाह साहब ने अपनी ज़िंदगी में पहली बार ऐसे आदमी

को देखा था। अब तक तो उन्होंने लोगों को पैसे के पीछे ही दौड़ते देखा था, इसलिये अब्दुल्लाह साहब को यह आदमी बड़ा अजीब लगा। साथ ही वह यह सोचने पर मजबूर हो गये कि आख़िर इस मज़हब में ऐसी क्या बात है कि अज़ान की आवाज़ सुनते ही इसके मानने वाले सब कुछ छोड़-छाड़ कर मस्जिद के लिए निकल पड़ते हैं।

इस एक घटना ने अब्दुल्लाह साहब को हिलाकर रख दिया और इस अनोखे मज़हब के बारे में जानने के लिए उन का मन व्याकुल हो उठा। इस्लाम उनके दिल के दरवाज़े पर दस्तक दे चुका था इसलिए जंग के बाद जब वह अमरीका लौटे और न्युयार्क (New York) शहर में आ बसे तब उन्होने आहिस्ता अहिस्ता इस्लाम के बारे में पूछ-ताछ शुरू कर दी। उन्हें एक ख़ुदा की बंदगी का नज़रिया बहुत अच्छा लगा। क्योंकि अब्दुल्लाह साहब एक अफरीक़ी ख़ानदान से संबंध रखते थे इसलिए उन्हें इस्लाम में समानता और भाई चारगी की भावना ने काफ़ी प्रभावित किया। देखते ही देखते अब्दुल्लाह साहब मुसलमान हो गये और ख़ुश क़िस्मती से उनके इलाक़े में उनको एक बहुत अच्छे उस्ताद मिल गये जिन्होंने उन्हें न सिर्फ बुनयादी इस्लामी तालीम दी बल्कि क़ुरआन को सही तरीक़े से पढ़ना सिखाया।

अब्दुल्लाह साहब से मेरी मुलाक़ात उस वक्त हुई जब वह फौज छोड़कर कामकाज के सिलसिले में न्युयार्क (New York) से डेटरॉईट (Detroit) आये और ''तौहीद सेंटर'' डेटराईट में अक्सर नमाज़ों में नज़र आने लगे। उन दिनों मैं इस मस्जिद का एज़ाज़ी (अवैतनिक) तौर पर इन्चार्ज था; किसी मस्जिद या दूसरे मज़हबी इदारे (संगठनों) का काम चलाना बहुत मुश्किल कार्य होता है हर रोज़ नई-नई कठिनाईयाँ पेश आती हैं । और फिर उनका हल तलाश करना और उनको लागू करना लोहे के चने चबाने जैसा है। मेरे और अब्दुल्लाह साहब के दर्मियान कई बार नाराज़गी पैदा हुई। वैसे तो हम दोनों अपने अपने इरादों में नेक थे मगर हमारे विचार में अच्छा ख़ासा अंतर था; अल्लाह की रहमत से हमारे यह आपसी तनाव धीरे धीरे दूर होते गये। हक़ीक़त तो यह है कि किसी से दिन में कई बार अल्लाह के घर में मिलें और उससे नाराज़ रहें यह नामुनासिब बात है और ईमान के लिए यह बड़ी चुनौती भी; और उस इम्तिहान में कामयाबी के लिए ऊँचे दर्जे की सहन

शक्ति की ज़रूरत होती है। आईये मेरे और अब्दुल्लाह साहब के आपसी तनाव के कुछ दिलचस्प और मज़ेदार क़िस्सों की तरफ़ नज़र डालें–

क्योंकि अब्दुल्लाह साहब नमाज़ें अक्सर इसी मस्जिद में पढ़ा करते थे इसलिए मैं चाहता था कि वह भी मस्जिद के कामों में कुछ हिस्सा लें। एक दिन मैंने उनसे प्रार्थना की कि वह अज़ान दें, वह झट से राज़ी हो गये मगर कहने लगे कि ''मैं मस्जिद के बाहर मेन रोड पर खड़े होकर अज़ान दूंगा।'' मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की, हम इस बिल्डिंग में मस्जिद स्थापित करने के लिए क़ानूनी तौर पर लाईसेन्स हासिल करने की दरख्वास्त दे चुके हैं और ऐसा करने से महानगर पालिका यहाँ के स्थानीय निवासियों की शिकायत नज़र अंदाज़ नहीं करेगी। इसलिये आप मेहरबानी करके मस्जिद के अन्दर ही अज़ान दें। अब्दुल्लाह साहब ने मेरी राय की ज़रा भी परवाह न की और बाहर अज़ान देने की बात पर अड़े रहे। इस पर मैंने निहायत संजीदगी से कहा आप को यहाँ की मुश्किलों का बिल्कुल अंदाज़ा नहीं है, मुझे यहाँ के निवासी और उनके वकीलों के अलावा डेटेरॉईट (Detroit) की महानगर पालिका के तमाम दफ्तरों की क़ानूनी कारवाई और फायर डिपार्टमेंट का भी सामना करना पड़ता है, आप लोग यहाँ आकर नमाज़ पढ़ कर घर चले जाते हैं, वैसे भी हमें ग़ैरमुस्लिम पड़ोसियों का लिहाज़ करना चाहिये। हमें बस अपने मुस्लिम भाईयों को ताज़ा करने की कोशिश करनी चाहिये।'' मेरे इस भाषण का अब्दुल्लाह पर कोई असर नहीं हुआ और वह अपनी बात पर डटे रहे। फिर मजबूरन, अल्लाह मुझे मुआफ करे मैंने एक और भाई को अज़ान देने को कहा और नमाज़ पढ़कर हम सब अपने अपने घरों के लिए रुख़सत हो गए। यहाँ मैं बताना चाहूंगा कि जहाँ तक मुझे मालूम है अमरीका में सिर्फ एक ही मस्जिद ऐसी है जिसे अपना लाउड स्पीकर (Loud Speaker) मस्जिद से बाहर रखने की इजाज़त है और यह इजाज़त हासिल करने के लिये मस्जिद के प्रबंधक मंडल को अमरीकी अदालत का दरवाज़ा खटखटाना पड़ा, और अदालत ने भी फैसला मुसलमानों के पक्ष में इसलिये दिया क्योंकि मस्जिद के इर्द गिर्द अधिकतर मुसलमान ही बसते हैं, ये मस्जिद डीयर बॉर्न, मिशिगन (Dearborn Michigan) में है।

अब्दुल्लाह साहब का ख्याल था कि मस्जिद की एक चाबी उनके पास भी हमेशा होनी चाहिये, मैने उन्हें बताया की मस्जिद तो नमाज़ के वक़्तों में खुली ही रहती है और ज़्यादा लोगों के पास चाबियाँ रखना इस लिये भी मुनासिब नहीं है, किसी की ग़लती से मस्जिद के दरवाज़े नमाज़ के बाद खुले रह सकते हैं और क्योंकि यह मेन रोड पर है चोरी, डकैती या बम वग़ैरा का ख़तरा बना ही रहता है, और हमारी इन्शुरेन्स कम्पनी ने भी हमें सुझाव दिया है की चाबियाँ ज़्यादा लोगों में न बाँटी जायें । वैसे तो मेरी बात बहुत ही मुनासिब थी लेकिन अब्दुल्लाह साहब को अच्छी न लगी।

अभी ज़्यादा दिन भी न गुज़रे थे कि अब्दुल्लाह साहब ने मुझसे एक मेहमान मित्र को रात में मस्जिद में ठहरने की इजाज़त चाही, मैंने उन्हें साफ़ मना कर दिया और साथ में यह सुझाव भी दिया कि मेहमान को अपने घर पर ठहरायें। उन्होंने जवाब दिया कि वह ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि उनके घर में उनकी बीवी भी है। मैंने कहा ''आप के मेहमान को मैं अपने घर में ठहरा लेता हूँ। बीवी तो मेरे घर में भी है फिर भी मेहमान को एक कमरे में ठहरा लुँगा या फिर किसी होटल में रहने का बंदोबस्त करके वहाँ का किराया भी दे दूँगा।'' इस बात से वह सहमत न हुए क्योंकि हर चीज़ का हल वह अपने ही तरीक़े से चाहते थे, और वह गुस्से में वहाँ से चले गये। अब्दुल्लाह साहब ने मुझे बाद में बताया कि उन्होंने कई मुसलमान भाईयों से मेरी शिकायत भी की थी हमारे इस तनाव के बावजूद अब्दुल्लाह साहब मस्जिद में हाज़िर रहते और जमाअत के साथ नमाज़ अदा करते।

अब्दुल्लाह साहब ने क़ुरआन पाक की कई सूरतें (पाठ) मुँह ज़बानी याद कर ली थीं और क़ुरआन पढ़ने (तिलावत) का उनका अन्दाज़ भी बड़ा दिलकश था। एक दिन मैने उनसे कहा कि वह इशा (रात) की नमाज़ पढ़ाया करें जिस पर वह राज़ी हो गये। अब्दुल्लाह साहब हर रोज़ नई सूरत(अध्याय) याद करते और वह इशा की नमाज़ में नई याद की हुई सूरत ही पढ़ा करते। यह तो स्वभाविक ही है कि नई याद की हुई सूरत में कोई न कोई ग़लती हो ही जाती थी और यह बात उनके पीछे नमाज़ पढ़ने वालों को अच्छी न लगती। इस बात को लेकर मैने अब्दुल्लाह साहब से चर्चा की कि वह सिर्फ वही सूरतें नमाज़ में पढ़ा करें जो पहले याद की हुई हों और खूब पक्की याद

हों। और बेहतर यह भी होगा कि जो सूरत वह पढ़ाने का इरादा रखते हैं वह एक दिन पहले मुझे भी सुना दिया करें ताकि उनकी ग़लतियों का सुधार एडवांस (समय से पहले) में हो जाये। मेरी यह बात उनके दिल में उतर गई और हमारी रोज़ाना की बैठक से उनकी क़ुरआन की ग़लतियाँ बिल्कुल ख़त्म होगई। इस महत्वपूर्ण तब्दीली से उनके पीछे नमाज़ पढ़ने वालों को भी बहुत ख़ुशी हुई इन चन्द दिनों की बैठक का यह भी फ़ायदा हुआ कि हम एक दूसरे को पहले से भी बेहतर समझने लगे और हमारे पुराने आपसी इख़्तिलाफ़ात (मन मुटाव) धीरे-धीरे ख़त्म हो गये यहाँ तक कि अब हम दोनों एक-दूसरे के क़रीब आ गये।

अब अब्दुल्लाह साहब की नमाज़ में एक और तब्दीली आई क्योंकि उनको क़ुरआन पाक से एक ख़ास मुहब्बत थी उन्होंने इशा की नमाज़ में लंबी लंबी सूरतें पढ़ना शुरू करदी और हर लंबी सूरत के बाद सूरते इख़लास भी पढ़ते, जिससे नमाज़ कुछ ज़्यादा ही लंबी हो जाती, एक दिन तो नमाज़ को ख़त्म होने में क़रीब 20 मिनट लग गये। बाक़ी नमाज़ियों ने अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की। जब मैंने यह बात अब्दुल्लाह साहब को बताई तो वह कहने लगे; ''मै उन सहाबी (पैग़मबर मुहम्मद के साथी) की तरह करना चाहता हूँ जो नमाज़ पढ़ाते वक़्त हर रकात में सूरत इख़लास पढ़ते थे।'' मैने कहा जहाँ तक मुझे याद पड़ता है वह सहाबी सिर्फ एक ही रकअत में ऐसा करते थे,'' अब्दुल्लाह साहब तड़क कर बोले '' मैने एक हदीस पढ़ी है जिस के मुताबिक़ वह दोनो रकातों में सूरत इख़लास पढ़ा करते थे, इसलिए मैं वैसा करना चाहुंगा।'' इस वार्तालाप का कोई फायदा न हुआ और उनकी नमाज़ें वैसे ही लंबी रहने लगीं।

एक रोज़ मैने देखा कि अब्दुल्लाह साहब फ़जर (सुबह के वक़्त) की नमाज़ की सुन्नतों के बाद मस्जिद की फ़र्श पर अपनी सीधी करवट लेटे हुए थे और उनका एक हाथ सर के नीचे था मुझे उनकी तबियत के बारे में फ़िक्र हुई और उनके क़रीब जाकर आहिस्ता से पूछा कि ख़ैरियत तो है? कहने लगे मैं बिल्कुल ठीक हूँ सिर्फ इस लिए लेटा हूँ कि अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद (स॰ अ॰ व॰) भी फ़जर की सुन्नतों के बाद इसी तरह से थोड़ा आराम फ़रमाया करते थे।'' हक़ीक़त यह है कि अब्दुल्लाह साहब जो कुछ

क़ुरआन और हदीस में पढ़ते थे उसको तुरंत अपनी ज़िन्दगी में उतार लेते थे।

अब्दुल्लाह साहब की घरेलू ज़िन्दगी भी हम लोगों के लिए एक सबक़ है। इस्लाम में उनकी ज़िंदगी में एक ख़ूबसूरत बदलाव आया जो उनके रहन-सहन और तौर तरीक़े में झलक रहा था उनके इस नये बरताव ने उनके घरवालों को प्रभावित किया जिस का नतीजा यह हुआ कि उनकी पत्नी और पत्नी की बहन इन दोनों ने इस्लाम क़ुबूल कर लिया! धीरे धीरे उनका असर बाक़ी रिश्तेदारों पर भी पड़ने लगा और उनकी पत्नी के कई रिश्तेदारं उन्हीं के हाथों मुसलमान होगये। खुदा ने उन्हें बहुत बच्चों से नवाज़ा। सब बच्चों की क़ुरआन की तिलावत बहुत अच्छी थी जिससे उनकी मेहनत का अन्दाज़ा होता है। उनका सब से बड़ा लड़का क़रीब 7 साल का था और उसने क़ुरआन की कई लम्बी सूरतें ज़ुबानी (मौखिक) याद कर ली थीं, साहबज़ादे पाँचों वक्त की नमाज़ों में मस्जिद में नज़र आते थे। कड़ाके की सर्दी में भी फ़जर की नमाज़ में दिखाई देते थे। मैं किसी को नहीं जानता जो अपने कमसिन बच्चे को सर्दी, बरफ, तूफान, आंधी में भी जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद लाया करता हो। नमाज़ फ़जर के बाद अब्दुल्लाह साहब अपने बेटे को मस्जिद में ही क़ुरआन पढ़ाया करते थे। अपने बेटे की परवरिश उन्होंने बेहतरीन तरीक़े से की थी। अपनी उमर के लिहाज़ से वह बहुत समझदार था और उसके बर्ताव में गज़ब का अनुशासन था। मेरे ख़्याल में वह बड़ा होकर ''इन्शा-अल्लाह'' एक बेहतरीन इमाम और ख़तीब बनेगा।

अब्दुल्लाह साहब की अंग्रेज़ी तो पहले से ही अच्छी थी मज़हबी ज्ञान और लगातार कोशिश से उनका आत्मविश्वास और बढ़ गया। मैं उनकी बात-चीत की शैली और समझाने के ढंग से बहुत प्रभावित हुआ और मैंने उनको जुमा का ख़ुत्बा पढ़ने का सुझाव दिया। पहले तो वह थोड़ा हिचकिचाये मगर फिर वह इस शर्त पर राज़ी हो गये कि वो ख़ुत्बा लिखकर पहले मुझे सुनायेंगें। उन्होंने तौहीद सेंटर डेटरॉईट (Detroit) में पहला ख़ुत्बा पढ़ा माशा-अल्लाह बहुत कामयाब रहा। ख़ुत्बे के बाद मैंने अब्दुल्लाह साहब का परिचय देते हुए प्रशंसकों को बताया कि गल्फ़ की जंग के दौरान वह किस तरह इस्लाम से परिचित हुये और लौटने पर इस्लाम क़ुबूल किया, और

उन्होने अपने परिवार को कितने अच्छे संस्कार दिये हैं जिस का सुबूत उनका बेटा है जो इस छोटी सी उमर में भी जमाअत से नमाज़ पढ़ने का पाबंद है। जुमा की नमाज़ के बाद जब अब्दुल्लाह साहब ने अपने ख़ुत्बे के बारे में मेरी प्रतिक्रिया जाननी चाही तो मैंने बताया कि ''माशा-अल्लाह'' आपने बहुत अच्छा ख़ुत्बा दिया और प्रसंशा की बात यह है कि निर्धारित समय में अपनी बात कह डाली जबकि अक्सर ख़तीब याद दिलाने पर भी समय का उल्लंघन करते नहीं चूकते। मैने उन की इस कामयाबी पर एक बार फिर मुबारकबाद पेश की। अब्दुल्लाह साहब कुछ कहे बग़ैर घर चले गये। इशा की नमाज़ से पहले हमारे इमाम हानी साहब ने मुझे बताया कि अब्दुल्लाह साहब काफ़ी नाराज़ और गंभीर नज़र आते हैं, मैने पूछा क्या वजह है? इमाम साहब कहने लगे कि ''आपने खुत्बे के बाद उनकी मौजूदगी में उनकी प्रशंसा की, अब्दुल्लाह साहब का कहना है कि एक हदीस के मुतबिक़ ये ऐसा ही है जैसे 'अपने किसी भाई का गला काटना'। मैंने हानी साहब से कहा ''तुम लोग सिर्फ एक हदीस को सामने रख कर नतीजा निकाल लेते हो, एक और हदीस में आया है कि हर आदमी का उतना प्रोत्साहन करना लाज़िम है जितने का वह हक़दार है और पैग़म्बर शुएब ने भी क़ौम को बार-बार यह नसीहत दी थी कि ''लोगों के अधिकार में कमी मत करो (क़ुरआन 26:183) और इसी तरह की नसीहतें क़ुरआन में और जगह भी देखने को मिलती है खुदा का शुक्र है कि मैंने अब्दुल्लाह साहब के परिचय में उनकी तारीफ़ों के पुल नहीं बाँधे। मैने उनका परिचय देना इसलिए मुनासिब समझा क्योंकि श्रोताओ (सुन्ने वाले) अपने नये ख़तीब के बारे में जानें।'' इशा की नमाज़ के बाद मैने अपनी बातें अब्दुल्लाह साहब की मौजूदगी में फिर दोहराई, तो ख़ुदा के करम से वह काफ़ी हद तक संतुष्ट हुये।

इसके बाद अब्दुल्लाह साहब को न सिर्फ मस्जिद में हर महीने एक खुतबा देने की डयूटी सौंपी गई बल्कि तौहीद सेन्टर, फार्मिंगटन हिल (Farmington Hill) में भी हर महीने में एक खुत्बा उनके ज़िम्मे तय हुआ सच्ची बात तो यह है कि दोनों मस्जिदों के लोगों ने मुझे व्यक्तिगत रूप से यह बात कही है कि उन्हे अब्दुल्लाह साहब का ख़ुत्बा बहुत पसंद है, और ऐसा होना लाज़मी था क्योंकि उनके बोले हुए शब्द ज़ुबान से कम और दिल से ज़्यादा निकलते थे और सुनने वालों के दिल और दिमाग़ दोनों पर असर

करते थे। बहुतों का यह भी कहना था कि उन्हें मस्जिद का पर्मानेन्ट ख़तीब बना दिया जाये। यहाँ यह बताना भी उचित समझता हूँ कि जिस जुमा को अब्दुल्लाह साहब खतीब होते हैं मस्जिद को चंदा और अन्य भेंट ज़्यादा मिलती है।

एक महीने बाद जुमा की नमाज़ के ख़ात्में पर नये प्रेक्षकों की जानकारी के लिये मैने अब्दुल्लाह साहब का परिचय देते हुए कहा कि मैं अब्दुल्लाह साहब की तारीफ़ के लिए नहीं खड़ा हुआ हूँ बल्कि प्रेक्षकों का हक़ है कि उनको नये खतीब के बारे में कुछ मालूमात दी जाये। लोगों को मैने यह भी बताया कि इन्शा-अल्लाह अब हर माह एक ख़ुत्बा अब्दुल्लाह साहब दिया करेंगे और मेरी ग़ैर मौजूदगी में ईमाम हानी और नाइब इमाम अब्दुल्लाह साहब ही मस्जिद के इन्चार्ज हैं इसलिए आप अपने तमाम सवालों और मुशकिलों के लिए इनसे संम्पर्क करें। ख़ुदा के करम से ये दोनों भाई अब अपनी ज़िम्मेदारी को बखूबी निभा रहे हैं। याद रहे कि अमरीका की तेज़ रफ़तार ज़िन्दगी में निजी कामों से वक़्त निकाल कर दीनी काम करना आसान नहीं है। मज़हबी ज़िम्मेदारियों के आलावा मस्जिद को पाँचों नमाज़ों के वक़्त खोलना-बंद करना सफ़ाई व मरम्मत कराना और लोगों की मुशकिलों को सुलझाना ख़ुद अपने आप में एक चुनौती है। दुआ है कि अल्लाह इन दोनों की इस Selfless (निस्वार्थ) सेवा को क़ुबूल करे।

अब अब्दुल्लाह साहब के पास न सिर्फ मस्जिद की चाबी है बल्कि वह इसके हर तरह से ज़िम्मेदार भी हैं। उनकी सोच में और व्यवहार में अब काफी लचक आगई है और अब वह मस्जिद के अन्दर ही अज़ान देते हैं। और अपनी पुरानी हट्धर्मी पर मुस्कुराते हैं।

एक दिन फ़जर की नमाज़ के बाद मैं बैठा कुरआन पढ़ रहा था और अभी सूरज निकला ही था, मैने देखा कि अब्दुल्लाह साहब अपने एक अमरीकी दोस्त के साथ मस्जिद में दाख़िल हुए और नमाज़ पढ़कर मेरी तरफ़ बढ़े। दुआ सलाम के बाद उन्होंने बताया कि वह हज अदा करने के बाद अभी-अभी डेटराईट (Detroit) पहुँचे हैं। मैने अनुरोध किया कि वह मेरे घर नाश्ते के लिए चलें। अब्दुल्लाह साहब ने कहा कि वह सफ़र से सीधे मस्जिद आये हैं, अभी घर नहीं गये क्योंकि पैग़म्बर मुहम्मद (स॰ अ॰ व॰) भी जब

सफर से वापस लौटते तो पहले मस्जिद तशरीफ़ ले जाते थे। यह बात मेरे दिमाग़ में घर कर गई और मैं सोचने लगा कि हममें से कितने ऐसे पैदाईशी और रिवायती मुसलमान हैं जो इस सुन्नत पर अमल करते हैं?

सच तो यह है किः-

अमल से ज़िन्दगी बनती है जन्नत भी जहन्नुम भी
यह ख़ाकी अपनी फ़ितरत में न नूरी है न नारी है।

अब्दुल्लाह साहब सिर्फ़ नाम के अब्दुल्लाह और मुसलमान नहीं बल्कि व्यहावारिक तौर पर सच्चे मुसलमान और अल्लाह के बन्दे हैं।

अब्दुल्लाह को पढ़ने और बोलने का बहुत शौक़ था, उन्होंने स्थानीय कॉलेज में दाख़िला ले लिया और डॉ॰ शेख़ अली सुलैमान की निगरानी में अरबी ज़ुबान की तालीम हासिल की। अब वह अरब (Middle-East) के मुसलमानों से अरबी में ही बात चीत करते हैं।

अब्दुल्लाह साहब का परिवार जितना बड़ा है उनकी आमदनी उतनी ही कम है लेकिन अल्लाह ने उनको इतना ज़हनी सुकून दिया है कि ग़रीबी में भी वह अपनी मज़हबी ज़िम्मेदारियों को बख़ुबी निभा रहे हैं। अपने परिवार को रोज़ना दीनी तालीम देते है। और ख़ुद भी क़ुरआन की लम्बी लम्बी सूरतें याद करते हैं। जुमा के ख़ुत्बे तैयार करते हैं और ग़ैर मुस्लिम को इस्लाम की तरफ़ आमंत्रित भी करते हैं।

याद रहे कि उनकी दुनियावी तालीम सिर्फ हाई स्कूल तक सीमित है। मैं सोचता हूँ कि हम लोगों में से जिनको अल्लाह ने बड़ी डिग्रियों और बाक़ी दुनियावी सहूलतों से नवाज़ा है उन्हें और बढ़ चढ़ कर इस्लाम के काम में हिस्सा लेना चाहिए। दुआ है कि, अल्लाह मुझे और इस कहानी के पढ़ने और सुनने वालों को दीनी सोच अता करे और इस पर अमल करने में हमारी मदद् करे।

यह गल्फ़-वार (Gulf War) अब्दुल्लाह साहब के इस्लाम क़ुबूल करने का बहाना बनी। ऐसे और भी कई अमरीकी फ़ौजियों ने सऊदी अरब से लौटने पर इस्लाम क़ुबूल किया।

जेम्स अबीबा

(James Abiba)

(एक अमरीकी विद्यार्थी और उसकी इस्लाम की खोज)

1980 की बात है, उस वक़्त मैं वाशिगंटन (Washington D.C.) के क़रीब एक मिलिट्री सेंटर फ़ोर्ट मीड (Fort Meade) में काम कर रहा था और मेरी धर्म-पत्नी उसी जगह पर मिलिट्री अस्पताल में डाक्टर थी। मैं फ़ोर्ट मीड के एक हाई स्कूल के नवी से बारहवीं विभाग के बच्चों को गणित पढ़ाया करता था और रोज़ाना पाँच अलग अलग कक्षाओं को पढ़ाया करता था। जेम्स उनमें से किसी गुरुप में नहीं था। उसने मेरे एक विद्यार्थी से कहा कि ''मुझे मिस्टर अहमद से मिलने की इजाज़त चाहिये।'' उस विद्यार्थी ने मुझसे जेम्स की अभिलाषा व्यक्त की। मैंने तुरंत जेम्स को मुझसे मिलने की इजाज़त दे दी। जेम्स ने आते ही मुझे इस्लाम के बारे में कुछ सवाल किये मैंने संक्षेप में उनका जवाब दिया।

इसके बाद वह दूसरी बार फिर कुछ सवाल लेकर आया। मैंने उनके जवाब भी दे दिए। मैने जेम्स से पूछा क्या यह उसके सोशल स्टडीज़ (Social Studies) के कोर्स में हैं? जेम्स ने कहा ''नहीं बल्कि मैने चंद हफ्ते पहले इस स्कूल की लायब्रेरी में इस्लाम के बारे में एक किताब देखी थी, उस किताब के पढ़ने के बाद मुझे इस्लाम मज़हब में कुछ दिलचस्पी पैदा हो गई है।'' मैंने उस से कहा '' इस देश में सरकारी स्कूल में किसी मज़हब के बारे में विस्तार में बात करने की इजाज़त नहीं है, बेहतर होगा कि हम दोनों स्कूल से बाहर फास्ट फूड (Fast Food) रेस्टोरेंट में बैठ कर इस विषय पर विचार विमर्श करें।'' हमने दिन और वक़्त तय कर लिया। इस तरह मेरी और जेम्स की कई मुलाक़ातें हुई जो कि अल्लाह की मेहरबानी से काफ़ी फ़ायदेमंद साबित हुईं।

एक दिन जेम्स ने मुझ से मस्जिद देखने की तमन्ना जताई तो मैं उसे एक नज़दीक के शहर लॉरेल (Laurel) में एक बहुत पुराने घर में ले गया जिसे उस वक्त एक मस्जिद के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा था। मैंने उसे नमाज़ का तरीक़ा भी बताया। जेम्स को यह बात अच्छी लगी कि हम नमाज़ में सिर्फ अल्लाह से रिश्ता जोड़ते हैं और इस पूजा में किसी क़िस्म का कोई मयुज़िक (संगीत) वग़ैरह की भी मदद् नहीं लेते, बल्कि पूरे सुकून और एकाग्रता से अल्लाह के सामने हाज़िर होते हैं। मस्जिद की सादगी और पूजा का यह सरल तरीक़ा जेम्स को बहुत भाया। मस्जिद में किसी की भी कोई तस्वीर या मूर्ती न देखकर जेम्स को यक़ीन हो गया कि मुसलमान मुहम्मद (स॰अ॰व॰) की पूजा बिल्कुल नहीं करते बल्कि सिर्फ एक ख़ुदा को मानते हैं और उसी की पूजा(इबादत) करते हैं। हमारी मुलाकातें बढ़ रही थीं और जेम्स भी अपनी मंज़िल की तरफ धीरे-धीरे बढ़ रहा था। इसी दौरान कई चीज़ें मेरे दिमाग़ में आई पहली बात यह कि जेम्स उस वक्त सिर्फ 16 साल का नौजवान था और इस देश के क़ानून के हिसाब से नाबालिग़ था। इसलिए मैंने सोचा की जेम्स के माता पिता जेम्स को इस नई राह की तलाश में मदद करने पर मुझे किसी किस्म की तकलीफ़ भी पहुँचा सकते हैं। और क्योंकि फ़ोर्ट मेड (Fort Meade) एक मिलिट्री सेन्टर है और उससे ही लगी हुई नेशनल सिक्योरिटी एजेंसी (National Security Agency) NSA, है जो देश भर के गुप्त कामों का केंद्र है, मुझे भय हुआ कि किसी वक्त भी मेरे लिए परेशानी खड़ी हो सकती है, और जेम्स ने मुझे यह भी बताया था कि उसके पिता (NSA) में अफ़सर हैं, यह सब बातें मेरे दिमाग़ में बार-बार आतीं और मेरी उलझन और बढ़ जाती।

हमारे बीच विचारों का अदान-प्रदान यूँ ही होता रहा। एक दिन जेम्स ने मुझसे कहा कि वह मुसलमान बनना चाहता है। मैंने उसको मुसलमान बनने का तरीक़ा बताया जो कि बहुत आसान और सादा है, साथ में मैंने यह भी चेतावनी दी कि अल्लाह की नज़र में मुसलमान बनने के बाद फिर से काफिर बनना बहुत बुरा और बड़े गुनाह का काम है इसलिए उसके लिए बेहतर यह

होगा कि वह इस्लाम के बारे में और छान बीन करे। जब तक उसका दिल पूरी तरह राज़ी न हो जाये तब तक कोई क़दम न उठाये।

अभी हफ़्ता भी न गुज़रा था कि जेम्स ने फिर कहा कि वह मुसलमान होना चाहता है, इस बार मैंने उसे ''कलमा शहादत'' पढ़ाया और वह अल्लाह की मेहरबानी से मुसलमान हो गया। जेम्स के मुसलमान होते ही हम दोनों की ज़िम्मेदारियाँ और बढ़ गयीं अब मेरी एक नई ज़िम्मेदारी यह भी थी कि हर इतवार को जेम्स को मैं उसके घर से लाया करूँ ताकि वह इस इलाक़े के दूसरे मुसलामानों के साथ ज़ोहर की नमाज़ पढ़ सके। नमाज़ के बाद मैं उसे अरबी भाषा के शब्द सिखाया करता, जेम्स को यह भाषा सीखने का बहुत शौक़ था उसने शीघ्र ही क़ुरआन पाक अरबी में पढ़ना शुरू कर दिया। जेम्स को संगीत से बहुत लगाव था, इसलिए उसने जल्द से जल्द अज़ान सीखी और उस मस्जिद का मुअज़्ज़िन (अज़ान देनेवाला) बन गया। एक नये मुसलमान की अज़ान की तासीर निराली ही होती है, जिसको किसी ने इन शब्दों में बंद किया है;

तेरा पयाम और है मेरा पयाम और है
इश्क के दर्द मंद का तरज़े कलाम और है।

एक दिन हमेशा की तरह जेम्स को मैं उसके घर से लाने गया। जैसे ही वह घर से बाहर निकला मैं उसको देखकर दंग रह गया। क्योंकि वह सर से पाँव तक ख़ूबसूरत अरबी लिबास में था। वैसे भी जेम्स के इलाक़े में रहने वाले विद्यार्थी और उनके माता- पिता के बीच में पहले ही मेरे और जेम्स की दोस्ती को लेकर चुपके-चुपके बातें चल रही थीं।

जब जेम्स मेरी कार के पास पहुँचा तो मैने उससे बेझिझक कहा, जेम्स तुम्हें यह पोशाक पहनने की कोई ज़रूरत नहीं थी, मुसलमान अमरीकी लिबास में भी नमाज़ पढ़ सकता है। ''जेम्स ने मेरा ख़ौफ़ भाँप लिया और तुरंत बोला, ''मिस्टर अहमद आपका ईमान कमज़ोर है।'' मैंने उससे पूछा, ''क्या तुम्हारे माता-पिता तुम्हें यह लिबास में देखकर नाराज़ नहीं होते''? उसने जवाब दिया बिल्कुल नहीं वे मुझे इस बारे में बिल्कुल तंग नहीं करते,

बल्कि मेरी माँ रोज़ाना मेरे लिए अलग से हलाल खाना तैयार करती है।'' यह सुनकर मेरी जान में जान आ गई और मैंने ख़ुदा का शुक्र अदा किया।

जेम्स अभी हाई स्कूल का विद्यार्थी था और अपने साथियों में बहुत मशहूर (Famous) भी था, इसी बीच एक दिन जेम्स मेरे पास आया और कहने लगा, मिस्टर अहमद मैं अपना नाम बदलकर मुस्लिम नाम रखना चाहता हूँ।'' मैने यह बात समझाने की कोशिश की कि नया नाम सुनते ही तुम्हारे साथी मिलना-जुलना छोड़ देंगें। अमरीकी नाम से तुम उनमें ख़ूब घुल मिल सकते हो और इस्लाम की सच्चाई को उन तक पहुँचा सकते हो। जेम्स ने मेरा यह सुझाव सुनकर फिर एक बार कहा ''मिस्टर अहमद आपका ईमान कमज़ोर है।'' और उसने अपना नाम जेम्स अली अबीबा पसंद किया।

जेम्स ने हाई स्कूल पास कर लिया और अब वह एक पार्ट टाईम (Part Time) नौकरी की तलाश में था, ताकि वह अपने कालेज के ख़र्च के लिये कुछ पैसे जमा कर सके। पश्चिमी देशों में यह एक बहुत बड़ी प्रथा (रिवाज) है कि माता-पिता की अच्छी कमाई और ऊँचे ओहदों के बावजूद नौजवान विद्यार्थी अपने कॉलेज के खर्च के लिए ख़ाली वक़्त में कुछ न कुछ काम कर लेते हैं, उन्हें किसी प्रकार का काम करने में कोई शर्म महसूस नहीं होती, बल्कि मामूली से मामूली काम मिलने पर भी गर्व करते हैं।

इस दौरान मेरी पत्नी ने अमरीकी फ़ौजी अस्पताल की नौकरी छोड़कर लोरेल मेरी लैंड (Laurel, Maryland) में अपना मेडिकल क्लीनिक खोल लिया, और उन्होंने जेम्स को अपने नये दवाख़ाने में रिसेप्शन (स्वागतकक्ष) पर रख लिया। उनकी मेडिकल प्रेक्टिस इस जगह पर बिल्कुल नई थी इस वजह से मरीज़ भी कम थे, जेम्स को यहाँ पर काम करने से यह फ़ायदा हुआ कि उसे अच्छा ख़ासा वक़्त मिलने लगा, जिस का उसने सही इस्तेमाल करते हुए काफ़ी इस्लामी किताबें पढ़ डालीं।

जेम्स हर साल ईद भी हमारे साथ मनाया करता। एक बार मुझ पर अल्लाह का ऐसा करम हुआ कि रमज़ान का पूरा महीना मक्का और मदीना में गुज़ारा और ईद की नमाज़ भी मक्का में पढ़ी यह मेरे लिए पहला मौक़ा

था कि मैं पूरा रमज़ान मक्का और मदीना में गुज़ारूँ इसलिये मैं बहुत खुश था लेकिन जेम्स के अकेलेपन के बारे में सोचकर दिल अक्सर बेचैन हो जाता। जब मैं वापस अमरीका पहुंचा तो मैने मस्जिद में कुछ भाईयों से जेम्स के बारे में पूछताछ की तो वो कहने लगे कि जेम्स ने रमज़ान के दौरान कई दीनी कामों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया, यहाँ तक कि वह रमज़ान के आख़िरी दस दिनों में मस्जिद में 'एतिकाफ़' में भी बैठा उनका यह भी कहना था कि उसने अल्लाह की इबादत की और मज़हबी कामों में हमको पीछे छोड़ दिया।

वक्त गुज़रता गया और जेम्स ने डिग्री कॉलेज में दाख़िला ले लिया और उसने 'इस्लामी इतिहास' में बी॰ ए॰ पूरा किया वह अपनी यूनिवर्सिटी में 'मुस्लिम स्टुडेंट असोसिएशन' का प्रमुख सदस्य था इसी दौरान उसने एक हिन्दुस्तानी मुस्लिम लड़की से शादी कर ली जो कि बहुत अच्छे घराने से ताल्लुक़ रखती थी। उसकी पत्नी को भी इस्लाम से बहुत लगाव था, इसलिए दोनों ने युनिवर्सल इस्लामिक स्कूल (Universal Islamic School, Chicago) में पढ़ाने का काम ले लिया।

कैथी

(Kathy)

(क़ुरआन का अनुवाद पढ़कर एक अमरीकी महिला का क़ुबूले इस्लाम)

इस्लामिक स्कूल सीएटल (Seattle) से मुझे जब प्रिंसिपल के पद के लिये बुलावा आया तो मैने मेरीलैंड (Maryland) के स्कूल को छोड़ दिया और सीएटल में आ बसा। सीएटल अमरीका के पूर्वी किनारे पर वाशिंगटन रियासत में स्थित हैं। प्रिंसिपल ऑफ़िस में कैथी नाम की एक महिला प्रिंसिपल की सेक्रेटरी के पद पर काम करती थी और उस शहर के इस्लामी मज़हबी कामों मे भी खूब बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेती थी। कैथी इस्लाम मज़हब से कैसे परिचित हुई और फिर उसने इस मज़हब को कैसे गले लगाया ये एक अजीब-ओ-ग़रीब (दिलचस्प) कहानी है। उसने अपनी कहानी कुछ इस तरह सुनाईः

मैं अभी प्राईमरी स्कूल में ही पढ़ रही थी कि एक दिन अपनी माँ के साथ अपने शहर की पब्लिक लाईब्रेरी में जाना हुआ। इस देश की लाईब्ररियों का यह रिवाज है कि जब किसी क़िस्म की किताबें ज़रूरत से ज़्यादा हो जाती हैं तो उन्हें रद्दी की टोकरी में नहीं फेंकते बल्कि उन्हें लाईब्ररी में ही कम दामों में बेच दिया जाता है। इसी लाईब्ररी में उस वक़्त ऐसी ही किताबों का एक सेल (sale) लगा हुआ था जहाँ छोटी बड़ी पुरानी किताबें सस्ते दामों में बेची जा रही थीं। मैंने अपनी जेबें टटोलीं तो कुछ सिक्के मिले जिनसे मैंने एक किताब ख़रीद ली। क्योंकि इस किताब को मैंने अपने जैब ख़र्च से बचाये हुये पैसों से ख़रीदा था मैंने उसे बहुत संभाल कर अपने कमरे में रख दिया।

ज़िन्दगी गुज़रती गयी और मैं मिडल और फिर हाई स्कूल में पहुँच गई। हाई स्कूल के बाद कॉलेज में दाख़िला मिल गया। मुझे विज्ञान से ज़्यादा आर्टस पसंद था और क्योंकि दुनिया के विभिन्न धर्मों में मुझे एक ख़ास रुची थी मैंने यहाँ पर ऐसा कोर्स चुना जिसमें तमाम मज़हबों के बारे में विस्तार पूर्वक ज्ञान दिया जाता हो। मेरे प्रोफ़ेसरों ने दुनिया के धर्मों के बारे में पढ़ाया और कुछ बड़े मज़हब जैसे ईसाई, यहूदी और इस्लाम के बारे में कुछ ज़्यादा ही तफ़सील से बताया। उन तमाम प्रोफ़ेसरों में कोई भी मुसलमान न था। मैंने ये सब कोर्स बड़ी आसानी से पास कर लिये और अपना ग्रैजूएशन भी पूरा कर लिया। और फिर शुरु हुई नौकरी की तलाश। देश के इस हिस्से में एक आर्टस ग्रैजूएट को काम के लिए बहुत हाथ पैर मारने पड़ते हैं और उस पर मैं ठहरी एक महिला तो मेरे लिए मुनासिब नौकरी मिलना और भी मुश्किल हो गया। कई महीनों तक यहाँ वहाँ की ख़ाक छानी मगर कुछ हाथ न लगा फिर आख़िर में हिम्मत हार कर मैं घर पर बैठ गई। बेरोज़गारी की परेशानियाँ और दिमाग़ी उलझनों को दूर करने के लिये मैं ख़ुद को घर के काम काज में व्यस्त रखने लगी। साफ़ सफ़ाई करना चीज़ों को इधर उधर करना अब यही मेरी वक़्त गुज़ारी का एक मात्र साधन बन गया। अचानक एक दिन मेरी नज़र उस किताब पर पड़ी जो मैंने प्राईमरी स्कूल के दौरान ख़रीदी थी। ये इन्सानी कमज़ोरी है कि जिस चीज़ की क़ीमत वो ख़ुद अदा करे वो चीज़ उसके दिल के उतने ही क़रीब होती है। मैंने इस किताब की तरफ़ हाथ बढ़ाया उस पर अच्छी ख़ासी मिट्टी जम चुकी थी मैंने मिट्टी साफ़ की और फिर उस किताब को लेकर वहीं बैठ गयी। खोलते ही मुझे समझ में आ गया कि यह कोई मज़हबी किताब है। मैंने अभी कुछ लाईनें ही पढ़ी थीं कि और पढ़ने को दिल चाहने लगा। मुझे यह किताब इतनी दिलचस्प लगी कि मेरे लिए उसको छोड़ना मुश्किल हो गया। और मैं उसमें पूरी तरह मगन रहने लगी। ये किताब इस्लाम के बारे में थी। मुझे हैरानी हुई कि इस किताब में बताया हुआ इस्लाम उस इस्लाम से बिल्कुल अलग था जो मुझे यूनिवर्सिटी में पढ़ाया गया था। मैंने सोचा कि क्या मेरे सारे प्रोफ़ेसर झूठ बोल रहे थे और इस्लाम का ग़लत रुप प्रस्तुत कर रहे थे?

इस किताब का ज्ञान मेरे दिल में घर करने लगा और उसके अध्ययन से मुझे बहुत सुकून और शांति मिलने लगी। दरअसल ये कोई मामूली किताब नहीं बल्कि क़ुरान का अंग्रेज़ी में अनुवाद था। आख़िरकार मैंने अपने दिल में ये फैसला कर लिया कि अगर यही सही इस्लाम है तो मैं भी मुसलमान बनूँगी। छानबीन करने पर मालूम हुआ कि इस्लाम अपनाने का तरीक़ा बहुत ही आसान है, मैंने भी कलमा-शहादत पढ़ा और अल्लाह की मेहरबानी से मुसलमान हो गई।

कुछ वक़्त और गुज़रा फिर मैंने एक अफ़ग़ानी नौजवान से शादी करली। हम दोनों ने अपनी क़ौम की सेवा करने का निर्णय ले लिया और इसी शहर के इस्लामी ग्रूप के साथ जुड़ गये। और अब हम दोनों यहाँ के स्थानीय लीडरों के साथ मिलकर तन मन से अपनी क़ौम की सेवा में लगे हुऐ हैं। हमें इस तरह की मक़सद वाली ज़िन्दगी बहुत पसंद है और हम इस्लाम के बताये हुये रास्ते पर ही चलने की हमेशा कोशिश करेंगे। दुआ है कि ख़ुदा हमारी इन मामूली कोशिशों को क़ुबूल फ़रमाये, आमीन।

***

रेहाना

(Rehana)

(एक अमरीकी नवमुस्लिम महिला का इस्लामी तौर-तरीक़े से लगाव)

अमरीकी सोसायटी में घर और शहर बदलने का चलन बहुत ज़्यादा है। यह देखा गया है कि आमतौर से एक ही जगह पाँच साल से ज़्यादा नहीं ठहरते। इस तुलना से मेरी फैमिली भी पक्की अमरीकी फैमिली है। हम सीएटल (Seattle) से लॉस एन्जेलिस (Los Angeles) शिफ़्ट होगये। यहाँ हमारे सबसे निकटतम मुस्लिम पड़ोसी अब्दुल वहाब थे। हम हर रोज़ न सिर्फ मस्जिद में कई बार मिलते बल्कि एक दूसरे के घर भी आया जाया करते। अब्दुल वहाब साहब ने एक ईसाई महिला से शादी की थी। एक दिन उन्होंने मुझे बताया उनकी पत्नी के मुसलमान बनने से पहले किन किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। उन्होंने अपनी आपबीती कुछ यूँ सुनाई।

जब मैने रेहाना से शादी की तो मैं सिर्फ नाम का मुसलमान था और रेहाना भी अपने ईसाई मज़हब से कोसों दूर थी। मैं कभी- कभी भूले-भटके मस्जिद चला जाता मगर वह कभी गिरजाघर में क़दम न रखती। जल्द ही हमारे बच्चे हुए और उन्हें बढ़ते देख कर मुझे उनके भविष्य की चिंता होने लगी। बच्चों की धार्मिक तौर से परवरिश के लिए ज़रूरी था कि उनकी माँ भी मुसलमान हो जाये । मैने रेहाना को मस्जिद चलने का आमंत्रण दिया तो उसने साफ़ मना कर दिया। मगर इस बात से उसमें एक नया परिवर्तन आया। अब उसने चर्च जाना शरू कर दिया अब जब भी मैं उस को मस्जिद चलने का सुझाव देता तो उस दिन चर्च ज़रूर जाती। सच तो यह है कि कोई आदमी किसी औरत से मुक़ाबला कर के जीत नहीं सकता। एक दिन बड़ी पवित्रता से उसके सामने एक सुझाव रखा, वह यह कि एक रविवार हम दोनों मिलकर चर्च जाया करेंगे और दूसरे रविवार को मस्जिद। इस तरह मैं रेहाना को इस्लाम से परिचित कराना चाहता था। उसने कुछ हिचकिचाहट के बाद मेरा सुझाव क़ुबूल कर लिया।

अपने घर का माहौल देखकर एक बात समझ में आ गयी कि अगर मुझे इसमें किसी क़िस्म का कोई बदलाव लाना है तो मुझे खुद में इस्लामी परिवर्तन लाए बिना मैं अपनी पत्नी और बच्चों के सामने इस मज़हब को पेश नहीं कर सकता। फिर अल्लाह का करना ऐसा हुआ कि मैंने इस्लामी तौर तरीक़ों को अपनी ज़िंदगी में पूरी तरह उतार लिया। मुझमें यह नया बदलाव मुझे भी पसंद आने लगा और लोगों को भी प्रभावित करने लगा।

सच बात तो यह है कि किसी भी पति-पत्नी से एक दूसरे की अच्छाईयाँ और बुराईयाँ छुप नहीं सकतीं क्योंकि दोनों एक दूसरे के होते ही इतने क़रीब हैं। रिहाना भी आहिस्ता आहिस्ता इस्लाम की तरफ़ खिचने लगी।

घरेलू जिन्दगी के अलावा मस्जिद के माहौल ने उसके दिल और दिमाग को खोल दिया और उसकी इस्लाम में रुची बढ़ती गई। और फिर एक दिन उसने इस्लाम क़ुबूल कर लिया, *अल्हमदो- लिल्लाह।*

रेहाना अब बिल्कुल एक अलग औरत थी। उसको इस्लाम से इतना लगाव हो गया कि वह अपने आपको पूरी तरह से इस्लाम से रंगना चाहती थी। उसने अचानक इस्लामी लिबास (नकाब) पहनना शुरु कर दिया और उसको इस बात पर हैरत होती कि अक्सर पैदायशी मुसलमान औरतें अपने सर को इस्लामी तरीक़े से क्यों नहीं ढ़ाँकतीं, आख़िर क्या चीज़ उन्हें ऐसा करने से रोकती है। इस्लामी लिबास तो औरत को और भी ज़्यादा सम्मानित बना देता है और इसके पहनने से उसकी पवित्रता झलकती है फिर भी ये लोग दूसरों का रंग देखकर उसमें क्यों रंग जाते हैं?

रेहाना के इस्लाम में आने से अब्दुलवहाब साहब की सारी मुश्किलें ख़त्म हो गई थीं। मगर अब रेहाना का हाल कुछ और था। इस नए मज़हब के बारे में वह सब कुछ जानना चाहती थी। और उसने किताबों का अध्ययन करना शुरु कर दिया, साथ ही जानकार लोगों से सवाल-जवाब भी करती। मगर यह ज्ञान सिर्फ पढ़ने और सुनने तक सीमित न था, बल्कि जो कुछ वह पढ़ती या सुनती उसे अपनी ज़िन्दगी में उतार लेती। उसने अपने पति से यह अनुरोध किया कि डॉ. मुज़म्मिल सिद्दीकी की फिक़्ह (इस्लामी क़ानून) की तक़रीर (भाषण) को कैसेटस पर रिकॉर्ड करें ताकि वह उनसे बार-बार फ़ायदा उठा सके। एक दिन अब्दुल वहाब साहब फिक़्ह के उस सबक़ में उपस्थित न

हो पा रहे थे, तो उन्होंने मुझसे वह लेक्चर रेकॉर्ड करने को कहा ताकि वह अपनी पत्नी की फ़रमाईश पूरी कर सकें।

देखते ही देखते रेहाना ने घर का माहौल ही बदल दिया। अब बच्चों की परवरिश भी इस्लामी ढंग से होने लगी। यहाँ तक कि उसने अपने बच्चों का शिक्षण (तालीम) इस्लामी स्कूल में ही दिलवाने का फ़ैसला कर लिया। उसका यह इस्लामी जोश और रंग ढंग देखकर बाक़ी पैदायशी मुसलमान दंग रह जाते। हम भी जब रेहाना से मिलते तो हमें भी अपने आप में कई मज़हबी कमियाँ महसूस होतीं। रेहाना इस नई ज़िन्दगी के लिये हमेशा अपने पति को धन्यवाद देती है क्योंकि उन्होंने ही उसे इस्लाम की राह दिखाने में पहल की थी।

रेहाना के माता-पिता शिकागो (Chicago) में रहते थे, जो कि लॉस ऐन्जिलिस (Los Angles) से क़रीब दो हज़ार मील दूर है। उन्होंने रेहाना के मुसलमान होने पर अपना असंतोष व्यक्त किया, और उनके व्यवहार में भी रेहाना के लिये बहुत कड़वाहट आ गई। यहाँ तक कि उन्होंने रेहाना के घर आना भी छोड़ दिया। रेहाना के पिता ख़ास तौर पर सख़्त मिज़ाज और बहुत ज़िद्दी इन्सान थे। इस्लाम के बारे में उनके विचार बिल्कुल अच्छे न थे। उनसे बात करना भी बहुत मुश्किल था। उनके इस व्यवहार के बावजूद भी रेहाना ने अपने माता-पिता से मेल-मिलाप रखना अपना फ़र्ज़ समझा और वह हर साल बच्चों को लेकर उनके पास शिकागो (Chicago) चली जाती। जब भी वापस आती तो निंदा और तिरस्कार के बोझ से लदी होती। मगर उसने हिम्मत न हारी और वह हर साल Chicago का चक्कर ज़रुर लगाती। बच्चे भी कुछ बड़े होने लगे। रेहाना के माता-पिता उन बच्चों की इस्लामी तरबियत और उनकी अच्छी आदतों से प्रभावित होने लगे और दिल ही दिल में सोचने लगे कि सचमुच इस्लाम इतना बुरा नहीं है जितना हम उसे समझते हैं। उनकी सोच यहाँ तक बदल गई कि वे कई साल बाद अपनी बेटी से मिलने लॉस एन्जेलिस (Los Angles) आने के लिये तैयार हो गये। हमें भी यह अच्छी ख़बर मिली और हम सब उसका बेसब्री से इंतिज़ार करने लगे। आख़िरकार वह लॉस एन्जेलिस (Los Angeles) आगये और हमारी हैरत और ख़ुशी की कोई सीमा न रही। मैंने अब्दुलवहाब सहाब की फ़ैमिली को शाम के खाने पर आमंत्रित किया और साथ ही एक दूसरी फ़ैमिली मिस्टर

और मिसेज़ नसीम को भी दावत दी। मिसेज़ नसीम भी रेहाना की तरह एक नई अमरीकी मुसलमान थीं, जो न सिर्फ इस्लामी लिबास में ही रहती बल्कि इस्लाम की तन-मन और धन से सेवा भी करतीं। हमारा मक़सद यह था कि रेहाना के माता-पिता का दूसरे अमरीकी मुसलमानों से भी परिचय कराया जाये ताकि उनके इस भेद-भाव की भावना में कुछ परिवर्तन हो जाये। हमारी वह शाम बहुत अच्छी गुज़री। रेहाना के माता-पिता हमारे अच्छे दोस्त बन गये। बातों में वक़्त ऐसा गुज़रा कि आधी रात हो गई और हमें मजबूरन यह महफ़िल समाप्त करनी पड़ी।

यहाँ पर एक घटना का उल्लेख करना ज़रुरी समझता हूँ। वह यह कि रेहाना और उसकी फ़ैमिली चंद क़दम चलकर अपने घर पहुँच गयी, मगर मिस्टर और मिसेज़ नसीम को क़रीब 20 मील रिवर साईड (Riverside) का सफ़र कार से तय करना था। रात के वक़्त ड्राईविंग बहुत ख़तरनाक होती है, कई लोग शराब के नशे में ही गाड़ी चलाते हैं जिससे दूसरों के लिये ख़तरा बना ही रहता है। मिस्टर और मिसेज़ नसीम की कार भी ऐसे ही एक नशे में धुत आदमी की कार से टकरा गई। दुर्घटना बहुत गंभीर थी। दोनों पति पत्नी कार से बाहर सड़क पर आ गिरे। नसीम साहब बिल्कुल बेहोश हो गये। मिसेज़ नसीम की भी बहुत-सी हड्डियाँ टूट गई, लेकिन वह अभी होश में थीं। अपने बेहोश पति के पास बैठकर ज़ोर-ज़ोर से क़ुरान पाक की तिलावत करने लगीं। थोड़ी देर बाद एक एम्बुलेंस पहुंची, उन्होंने देखा कि एक महिला अजीब-ओ-ग़रीब लिबास में बैठी एक अजनबी भाषा में बातें कर रही है। उन्होंने मिसेज़ नसीम से पहला सवाल यह किया कि 'क्या तुम अंग्रेज़ी समझती हो?' मिसेज़ नसीम ने अंग्रेज़ी में जवाब दिया 'हाँ समझती हूँ, मैं तो सिर्फ़ अरबी में क़ुरान पाक की तिलावत कर रही थी।'' दोनों को अस्पताल ले जाया गया। वह कई महीने अस्पताल में रहे, बहुत इलाज हुआ। क़रीब एक साल के बाद दोनों फिर चलने फ़िरने के क़ाबिल हो गये, *अल्हमदो लिल्लाह*!

रेहाना के माता-पिता कुछ रोज़ के बाद ही शिकागो वापस चले गये। रेहाना की अब एक ही इच्छा थी कि किसी तरह उसके माता-पिता इस्लाम क़ुबूल कर लें। एक दिन मेरी पत्नी ने मुझे बताया कि रेहाना बहुत रो रही है, मैंने पूँछा कि क्या बात है? उसने बताया कि रेहाना की माँ बहुत बीमार है

और रेहाना को यह फ़िक्र (चिंता) है कि कहीं मुसलमान बनने से पहले ही उनकी मृत्यु न हो जाये क्योंकि नर्क बहुत भयानक जगह है। अफ़सोस कि रेहाना की तमन्ना पूरी न हो सकी और उसकी माँ इस्लाम में आने से पहले ही दुनिया से चल बसी।

जैसा कि मैं पहले भी बता चुका हूँ, रेहाना के पिता बड़े कठोर और ज़िद्दी इन्सान थे फिर भी हम सबने उनसे मेल जोल बनाये रखा। अब्दुलवहाब अपने कारोबार के सिलसिले में क़रीब हर महीने शिकागो जाते तो अपने ससुर से ज़रुर मिलते। उनसे कोई ऐसी बात न कहते जो उनको पसंद न आये। रेहाना के पिता मेरे भी दोस्त बन गये थे। मैं भी चाहता था कि कोई ऐसा ठोस क़दम उठाऊँ जिसका उन पर अच्छा असर हो। इस दौरान मैं डेटराईट (Detroit) में अपने परिवार के साथ शिफ्ट हो गया। डेटराईट शिकागो से काफ़ी क़रीब है। मैंने रेहाना के पिता को डेटराईट से फ़ोन किया और उनको हमारे पास आने का आमंत्रण दिया। बदक़िस्मती से यह वह वक़्त था जब डेटराईट (Detroit) की पुलिस के कुछ लोगों के बुरे कामों की वजह से इस शहर की छवि को बहुत नुक्सान पहुँच चुका था। इसलिये रेहाना के पिता ने मुझे यह जवाब दियाः ''इम्तियाज़, मेरा दिल तो बहुत चाहता है कि तुम्हारे पास आऊँ लेकिन मेरी यह पूरी कोशिश है कि ज़िन्दगी भर डेटराईट (Detroit) जैसे शहर में क़दम न रखूँ।''

दुआ है कि ख़ुदा रेहाना के पिता के दिल के दरवाज़ों को इस्लाम के लिये खोल दे, आमीन।

इमाम सिराज वहाज

(Imam Siraj Wahaj)

(एक अमरीकी मुस्लिम लीडर; अल्लाह का शेर)

मुस्लिम स्टुडेन्ट एसोसिएशन (MSA) पूरी अमरीका और केनेडा के मुसलमानों की सब से बड़ी इस्लामी ऑर्गानाईज़ेशन (संस्था) मानी जाती थी। इसके कार्यकर्ता अधिकतर वे मुस्लिम विद्यार्थी थे जो अमरीका और केनेडा के विभिन्न महाविद्यालयों में शिक्षण पा रहे थे। यही नौजवान बहुत श्रृद्धा और जोश से इस्लाम की सेवा भी करते। इन विद्यार्थी में से बहुतों को यहाँ की नागरिकता भी प्राप्त हो गयी है और वे स्थायी रुप से यहाँ पर बस चुके हैं। ऐसे में नयी संस्था की स्थापना की ज़रुरत महसूस होने लगी, जिसमें अमरीका और केनेडा के मुसलमान नागरिक और विद्यार्थी भी भाग ले सकें। इस नई संस्था का नाम ''इस्लामिक सोसाइटी ऑफ नॉर्थ अमरीका (ISNA) रखा गया और एम एस ए (MSA) उसकी शाखा की तरह काम करने लगी।

इमाम सिराज वहाज और मेरी यह ख़ुशक़िस्मती थी कि हम दोनों ना सिर्फ (MSA) की मजलिस-ए-शूरा और कार्यकारी समिति (Executive Council) में थे बल्कि हम (ISNA) की पहली मजलिस-ए-शूरा और कार्यकारी समिति के सदस्य भी चुने गये। हमारी सभायें लम्बी और थका देने वाली हुआ करती थीं और कार्यसूची (Agenda) इतनी बड़ी होती थी कि सिर्फ़ कुछ सदस्यों को ही अपनी बात कहने का मौक़ा मिलता था। हमें आपस में निजी बातचीत करने का और मिलने का मौक़ा भी कम ही मिलता था। एक दिन ख़ुशकिस्मती से मैं और इमाम सिराज वहाज दोपहर के खाने के दर्मियान एक ही मेज़ पर बैठ गये। मैं काफ़ी दिनों से यह जानने का इच्छुक था कि सिराज वहाज सहाब मुसलमान कैसे हुए? मेरे पूछने पर उन्होंने अपनी कहानी का वर्णन कुछ इस तरह कियाः

''मैं अमरीका में मशहूर 'ब्लैक मुस्लिम संस्था' का एक सक्रीय सदस्य था। यह संस्था असल इस्लामी ज्ञान और आदतों से बिल्कुल जुदा है। इसी दर्मियान एम एस ए (MSA) ने गर्मियों में एक ट्रेनिंग कैम्प शुरु किया जिसमें अलग-अलग शहरों के गिने चुने लोगों को मज़हबी शिक्षण दिया जाता था। खाना और रहना सब मुफ़्त था। मैं भी एक बार उस कैम्प में उपस्थित हुआ। प्रोग्राम की शुरुआत क़ुरआन पाक के पाठ से हुई। मुझे अच्छी तरह याद है कि 'तिलावत' (क़ुरआन का पाठ) एक सूडानी भाई ने की, मैं उस वक़्त अरबी ज़ुबान से बिल्कुल अनजान था, यहाँ तक कि अरबी का एक शब्द भी मैं न बोल सकता था और न ही समझ सकता था। फ़िर भी क़ुरआन की तिलावत का मुझ पर बहुत गहरा असर हुआ और मैं बेपनाह रोने लगा। मेरी दोनों आँखों से आँसुओं की नदियाँ बहने लगीं। क़ुरआन के पाठ का मेरे दिल और दिमाग़ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और मैने अपने आप से कहा कि यह जो कुछ भी है, सत्य है। और उस दिन से मैं पक्का सुन्नी मुसलमान बन गया। *अल्हमदुलिल्लाह*!

सिराज वहाज साहब ने तुरन्त अरबी भाषा सीखना शुरु कर दिया। अपनी लगातार मेहनत और लगन से आखिर उन्होंने क़ुरआन पढ़ना सीख लिया और आहिस्ता-आहिस्ता वह मस्जिदे तक़वा, न्यू यार्क (New York) के इमाम (नमाज़ पढ़ाने वाला) बन गये। उनके जुमें के ख़ुत्बे (प्रवचन) बहुत प्रभावशाली होते। बहुत सारे लोगों ने उनके हाथों इस्लाम मज़हब स्वीकार किया। उस मस्जिद के इर्द-गिर्द मुसलमानों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती गई यहाँ तक कि सिराज वहाज साहब अब एक कौमी लीडर के रुप में उभर कर आगये और (MSA) की मजलिस-ए-शूरा और कार्यकारी समिति के सदस्य भी चुने गये।

एक बार मैने उनसे पूछा कि आप की नज़र में (ISNA) और दूसरी मुस्लिम संस्थाओं का प्रदर्शन कैसा है? उन्होंने बढ़े तेज़ स्वर और स्पष्ट शब्दों में जवाब दिया ''सच तो ये है कि तुम सब बहुत सुस्त और कामचोर हो, अक्सर कामों में तुम्हारा प्रदर्शन बहुत मामूली होता है। उदाहरण के तौर पर जब मैं ब्लैक मुस्लिम संस्था का सदस्य था मेरे ज़िम्मे हर रोज़ बहुत से

वर्तमान पत्र बेचना था, मैं घंटों अपने पाँव पर खड़ा होकर ये काम पूरा करता यहाँ तक कि उस जवानी में भी मेरे पाँव कांपने लगते। तुम लोग बातें तो बहुत करते हो मगर काम बहुत कम। सिराज वहाज साहब की मस्जिद न्यूयार्क (New York) शहर के भीतरी हिस्से में है जहाँ दिन-रात नशीली पदार्थो (Drugs) का बाज़ार बहुत गरम था। इस कारोबार के लीडर बहुत अमीर और निडर थे। इस इलाके से इस कारोबार को ख़त्म करना मुश्किल ही नहीं ख़तरनाक भी था। अपने कारोबार में किसी का हस्तक्षेप ये लोग बर्दाश्त नहीं करते थे और दख़ल अंदाज़ी करनेवालों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता था। इस तरह नशीली दवाओं का धंधा इस इलाके में चोटी पर था। सिराज वहाज साहब को यह बात पसंद न थी। उन्होंने इस कारोबार के अड्डों और लीडरों की गुप्त जगहों का पता उन नये मुसलमानों से लगाया जो कि इस्लाम स्वीकार करने से पहले इस कारोबार का हिस्सा थे। फिर सिराज वहाज साहब ने अपने इलाक़े के कई सौ मुसलमानों को इकट्ठा करके सारे इलाक़े का दौरा किया और उन्होंने ड्रग्स के लीडरों को बेधड़क कह दिया, ''कल तक इस इलाक़े से कूच कर जाओ वरना हम सब मिलकर तुम्हें ख़त्म कर देंगे।'' उन लीडरों ने सिराज वहाज साहब से कहा कि आप हमसे हमारी रोज़ी क्यों छीन रहें है? इस पर सिराज वहाज साहब बोलेः ''इस मुस्लिम इलाके में नशीली पदार्थो की बिल्कुल इजाज़त नहीं'' सिराज वहाज साहब ने अगले रोज़ फिर पूरे इलाक़े का दौरा किया, सारा कारोबार बंद हो चुका था और सब लीडर अपने अपने अड्डों से भाग चुके थे। इस तरह यह इलाक़ा ड्रग्स से बिल्कुल शुद्ध हो गया।

अमरीकी सरकार यह देखकर दंग रह गयी, क्योंकि उस ने इस इलाके में इस ग़ैर क़ानूनी कारोबार की रोकथाम के लिये बहुत-सी योजनायें बनाई थी और काफ़ी सारा पैसा भी ख़र्च हो चुका था, मगर सफलता की कोई सूरत नज़र नहीं आ रही थी। सिराज वहाज साहब का राष्ट्रीय टी. वी. पर इन्टरव्यू लिया गया। उनसे ये पूछा गया कि'' आप ने यह मुश्किल काम क्यों और कैसे अंजाम दिया?'' सिराज वहाज साहब ने जवाब दिया 'इस्लाम में नशीली पदार्थो के इस्तेमाल या कारोबार की बिल्कुल अनुमति नहीं है। जहाँ इस्लाम है वहाँ यह कारोबार नहीं चल सकता। इस्लाम ग़रीब जनता को इन

लोगों के हाथों नष्ट होते नहीं देख सकता। इस कार्य में सफलता का राज़ सत्य में विश्वास और दृढ़ संकल्प है, जिनके बिना ऐसे बड़े लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सकते।''

सिराज वहाज साहब अमरीकी और केनेडा के विभिन्न इस्लामी संस्थाओं के साथ इस मज़हब की सेवा में लगे हुये हैं। ख़ास तौर से नौजवान लोगों में सिराज वहाज साहब बहुत मशहूर हैं। इस्लामी स्कूल और मस्जिदों के लिये पैसा इकट्ठा करने में भी आप बहुत कामयाब हैं। आप जब भी उन्हें देखेंगे उनके हाथ में क़ुरआन या हदीस (मुहम्मद पैगम्बर (स.अ.व.) के बयान) की खुली किताब होगी, चाहे वो एअरपोर्ट पर हों या किसी और जगह।

जब मैं आख़िरी बार अमरीका से हज के लिये मक्का आया तो कई अमरीकी मुसलमानों से मुलाक़ात हुई। मैंने उनसे पूछा कि इस साल और कौन-कौन आया है? वह कहने लगे, ''सिराज वहाज साहब आये हैं और काबा के व्यवस्थापक उनकी तलाश में हैं ताकि वह काबा का ग़िलाफ़ (ख़ोल) बदलने की रस्म में उनका साथ दें। सिराज वहाज साहब की गिनती अंतर्राष्ट्रीय मुस्लिम लीडरों में होती है।

मेरा ख़्याल है कि किसी को सिराज वहाज साहब के बारे में किताब लिखनी चाहिये उनकी ज़िन्दगी की कहानी अपने आप में एक सबक़ है जिस से बहुतों को निश्चिंत ही लाभ होगा।

सिराज वहाज साहब की गिनती ख़ुदा के शेरों में होती है जिनके बारे में किसी ने क्या ख़ूब कहा हैः

ये क्या नाज़ है कि ज़माने ने बदला है तुझे
मर्द वो हैं जो ज़माने को बदल देते हैं।

***

सूज़ैन

(Suzan)

(एक अमरीकी महिला की इस्लामी शिक्षण से मोहब्बत)

सूज़ैन (Suzan) एक अमरीकी ईसाई महिला थी। उसने एक अब्दुल क़ादिर नाम के बर्मी (Burmese) मुसलमान से शादी की थी। दोनों मेरीलैन्ड (Maryland) ज़िले के निवासी थे।

अब्दुल क़ादिर जूतों की एक कंपनी में मैनेजर थे। वह अक्सर लॉरेल (Laurel) मस्जिद में इतवार को ज़ोहर (दोपहर) की नमाज़ के लिये आते। एक दिन उन्होंने अपनी घरेलू परेशानियों के बारे में मुझसे यह कहा :

''मैंने एक ईसाई औरत से शादी की है, ख़ुदा ने हमें दो जुड़वा बच्चियों से नवाज़ा है। मैं उन बच्चियों के भविष्य को लेकर चिंतित हूँ। मैंने हर तरह की कोशिश की, कि अपनी पत्नी को मस्जिद लाऊँ मगर हमेशा असफल रहा हूँ। आपके ख़्याल में मुझे अब क्या करना चाहिये।''

मैने उन्हें सुझाव दिया कि वह अपनी पत्नी को हमारे घर खाने पर लायें, वह मेरी पत्नी से मिलेंगी तो उनकी हिचक दूर हो जायेगी और वह बाक़ी मुसलमान औरतों से मिलने में संकोच नहीं करेंगी। वह तरीक़ा कारगर साबित हुआ।

सूज़ैन (Suzan) मस्जिद आने लगी और क़ुरआन पाक की तफ़सीर (व्याख्या) की सभाओं में उपस्थित रहने लगी। कुछ हफ़्ते बड़े सुकून से गुज़र गये। एक रविवार के दिन मैंने तफ़सीर का सबक़ (पाठ) समाप्त किया और श्रोतागण से सवाल पूछने के लिये कहा। सूज़ैन ने एक सवाल किया, इससे पहले कि मैं उस सवाल का जवाब देता, उपस्थित लोगों में से एक साहब ने उसका जवाब तुरन्त दे दिया। जवाब सुनते ही सूज़ैन ख़ूब रोने लगी, सारे लोग दंग रह गये कि आख़िर हुआ क्या है। सूज़ैन का रोना न थमा तो

उसके पति अब्दुल क़ादिर उसे घर ले गये। बाद में मैने अब्दुल क़ादिर से सूज़ैन के अचानक रोने की वजह पूछी, अब्दुल क़ादिर ने कहा, ''सूज़ैन का ख़्याल है कि उसने उस जवाब देने वाले आदमी को नाराज़ कर दिया, क्योंकि उस आदमी का चेहरा काफ़ी गंभीर था। सुज़ैन एक शरीफ़ और नरम दिल की औरत है और उसकी पूरी कोशिश होती है कि उससे कोई नाराज़ ना हो'' मैंने अब्दुल क़ादिर साहब से कहा निश्चिंत रुप से वह आदमी सूज़ैन से नाराज़ नहीं था और उसके चेहरे की गंभीरता भी क़ुदरती है। सच तो यह है कि पाकिस्तान और हिंदुस्तान के लोगों के चेहरे अक्सर गंभीर और संजीदा होते हैं, और यह बात आप किसी भी एअरपोर्ट, बस स्टॉप या बाज़ार में देख सकते हैं। आप घर जाकर सूज़ैन को बड़े सुकून से समझायें।'' आहिस्ता-आहिस्ता यह बात सूज़ैन की समझ में आगयी और वह कुछ हफ़्तों के बाद फिर से मस्जिद आने लगी।

सूज़ैन तफ़सीर की सभाओं में अब और बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेने लगी और उसे यह सवाल व जवाब का तरीका भी बहुत पसंद आता। इससे उसे इस्लाम को समझने में बहुत मदद मिलती। और उसको यह बात भी भली लगी कि इस्लाम में सवाल व जवाब की इजाज़त है, क्योंकि कुछ मज़हबों में सवाल करने की अनुमति तक नहीं होती, तो जवाब का अवसर तो दूर की बात है। सूज़ैन ने मस्जिद में आने वाली बाकी औरतों से भी दोस्ती कर ली और एक दूसरे से बहुत प्रेम व सम्मान से मिलने लगे।

सूज़ैन की सोच बिल्कुल इस्लामी हो गयी और उसको अपनी यह नई सोच बहुत भली लगती। अब उसने मुसलमान बनने का अपना इरादा हम लोगों के सामने रखा, और मेरी यह खुशकिस्मती थी कि मैने उसे ''कलमा शहादत'' समझाया और पढ़ाया। अब सूज़ैन हम सब की मुसलमान बहन बन गयी। उसी रोज़ मैंने अब्दुल क़ादिर और सूज़ैन का इस्लामी तरीक़े से निकाह भी किया और मस्जिद में ही शादी भी हो गयी। वह दिन हम लोगों के लिये बहुत खुशी का दिन था। सूज़ैन ने अपना नया नाम 'सईदा' रखा जो उसके

व्यक्तित्व के अनुकूल था क्योंकि वो हमेशा खुश रहने वाली, नेक और शरीफ़ औरत थी।

इस्लामी निकाह के मौके पर मैने दोनों को स्पष्ट कर दिया कि इस्लामी कानून के अनुसार पति के लिये ज़रूरी है कि अपनी पत्नी को 'महर' दे जिसकी नियुक्ति उनकी आपसी सहमति पर निर्भर है, और यह महर पत्नी की निजी संपत्ति है जिसमें उम्र भर पति को किसी किस्म की कोई दखलअंदाज़ी की अनुमति नहीं है। अब्दुल कादिर ने बहुत खुशी से महर की तय की हुई रकम अदा की। सईदा भरी सभा में औरत का सम्मान और उसके अधिकार की सुरक्षता देखकर दंग रह गई और उसके नये और ताज़े ईमान को और शक्ति मिली। यह घटना मेरीलैन्ड (Maryland) ज़िले में घटी, एक ऐसा ही किस्सा बाद में मिशिगन (Michigan) ज़िले में भी देखने को मिला जिसका वर्णन यहाँ पर उचित होगा।

तौहीद मस्जिद के इमाम की हैसियत से मेरी ज़िम्मेदारी यह भी थी कि मिशिगन ज़िले के कानून के मुताबिक और इस्लामी कानून की रोशनी में निकाह पढ़ाया करूँ। एक मुसलमान नौजवान ने मुझसे प्रार्थना की, कि उसका एक औरत से निकाह पढ़ा दूँ। मैंने दोनों को निकाह का इस्लामी दृष्टिकोण बताया और इस्लाम में मर्दों और औरतों को एक दूसरे पर क्या अधिकार है उसकी जानकारी भी दी। साथ ही महर का स्पष्टीकरण भी किया। दोनों ने मिलकर महर की रक़म तय कर ली और फिर निकाह का फ़ार्म भी भर दिया। आख़िर में मैनें दोनों से कहा कि ''इसके पहले कि मैं तुम दोनों से शादी के बंधन की शपथ लूँ और इन फ़ार्मो पर हस्ताक्षर कराऊँ, अगर तुम्हारे मन में कोई प्रश्न या शंका हो तो अवश्य पूछ लें।'' उस औरत ने कहा ''मेरे पास तो कोई प्रश्न नहीं है।'' नौजवान भाई बोल पड़े कि ''मुझे एक ज़रूरी सवाल करना है, और वह यह कि जिस तरह अपनी होने वाली पत्नी को 'महर' देना ज़रूरी है और उस रक़म पर मेरा कोई अधिकार न होगा, इसी तरह क्या यह ज़रूरी नहीं कि मेरी पत्नी भी मुझे

महर दे?'' मैने उसे बताया कि अल्लाह के क़ानून में ऐसा नहीं है। यह सुनकर वो आश्चर्यचकित हो गया, लेकिन वह औरत इस्लामी क़ानून में औरत की प्रतिष्ठा और मान देखकर सईदा की तरह दंग रह गई और साथ ही बहुत संतुष्ट भी हुई।

सूज़ैन ने पहले इस मज़हब को समझा और परखा। अपनी तमाम शंका और शुबाह को खत्म किया और फिर बहुत सोच समझ कर इस्लाम में क़दम रखा। इसलिये मुसलमान बनते ही उसे अपना रहन सहन और आदतों को बदलने में कोई परेशानी नहीं हुई। इस्लाम स्वीकार करते ही उसने स्वयं ही इस्लामी लिबास (हिजाब) पहनना शुरु कर दिया और पड़ोसी, रिश्तेदार और दूसरे मिलनेवालों की ज़रा भी परवाह न की। उसे इस नई राहे-ज़िन्दगी पर बहुत गर्व था। उसकी दोनों जुड़वा बच्चियाँ उस वक़्त प्राइमरी स्कूल में पढ़ रही थी, सूज़ैन ने उनको भी स्कार्फ (scarf) पहनने की शिक्षा दी। सूज़ैन और उसकी दोनों बच्चियाँ इस्लामी लिबास में बहुत भली और प्रतिष्ठित नज़र आतीं।

सूज़ैन जब भी पैदाइशी मुसलमान औरतों को मस्जिद में ग़ैर इस्लामी लिबास में देखती तो वह ज़ुबान से कुछ न कहती मगर वह उन औरतों और उनके पतियों को बहुत अचम्भे से देखती। सुज़ैन की सोच शायद अकबर अलाहबादी से काफ़ी मिलती थी, वह कहते हैं :

बे परदा नज़र आई जो कल चंद बीबियाँ
अकबर ज़मीन में ग़ैरते-कौमी से गढ़ गया
पूछा जो मैंने आप का परदा वो क्या हुआ।
कहने लगीं कि अक़्ल पर मर्दों की पड़ गया।

कमसिन बच्चियों को स्कूल में स्कार्फ़ पहने देखकर उनके हम उम्र बच्चे अचंभित हो जाते। और कभी-कभी वे उन्हें इस अदभुत पहनावे की वजह से सताते भी थे। मगर दोनों बच्चियों में ग़ज़ब की सहनशीलता थी और वे बड़ी बहादुरी से सारी कठिनाईयों का सामना करतीं। जब मुझे इस बात का ज्ञान

हुआ तो मैंने अब्दुल क़ादिर की मौजूदगी में सूज़ैन से कहा कि मासूम बच्चियों को इस उम्र मे मुश्किल में डालने की कोई ज़रूरत नहीं। इस पर सूज़ैन ने हम दोनों की तरफ़ देखकर कहा कि बच्चियों को इस उम्र से ही सही राह पर चलना है अगर वे इस पर अभी से नियमित रूप से न चलीं तो भविष्य में उनके लिये इस पर अमल करना कठिन हो जायेगा। हम दोनों सूज़ैन के ईमान की स्थिरता और शुद्धता देखकर शर्मिन्दा हो गये। अब्दुल क़ादिर ने ज़ोर का क़हक़हा लगाया और कहने लगे ''हम पैदायशी मुसलमान इस्लाम का सही मूल्य नहीं जानते क्योंकि हमें यह धर्म तो विरासत में मिला है, मेरी पत्नी और दूसरे कई नये मुसलमान दरअसल हम से बेहतर मुसलमान हैं।''

अब्दुल क़ादिर और सूज़ैन अब माशा-अल्लाह (अल्लाह की मर्ज़ी से) एक बहुत बेहतरीन ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं और अपनी बच्चियों की परवरिश इस्लामी तरीक़े से ही करना पसंद करते हैं।

1- Washington D. C
2- Laurel (Maryland)
3- Detroit
4- Farmington Hills (Michagan)
5- Chicago
6- Los Angeles
7- Seattle
8- New York City

डॉ. नजात

(Dr. Najat)

(एक हिन्दू डॉ. का क़ुबूले इस्लाम और क़ौम के लिये निःस्वार्थ सेवायें)

डॉ. नजात इंडिया में एक हिन्दू घराने में पैदा हुये और वहीं पर पले बढ़े। मैं उनका असली हिन्दू नाम लिखने का साहस नहीं करुँगा क्योंकि वह नाम जितना लिखना मुश्किल है उतना ही पुकारना दुशवार है। उन्होंने दुनियावी शिक्षण के साथ अपना धार्मिक शिक्षण भी इंडिया में हासिल किया और अपने माता-पिता के साथ मांदिरों में पूजा पाठ भी करते रहे। इंडिया में इंजिनियरिंग की डिग्री लेने के बाद वह उच्च शिक्षण के लिये विन्डसर (Windsor) आये, जो कैनेडा, (Canada) में स्थित है।

विन्डसर यूनिवर्सिटी कैम्पस में उनका मेल मिलाप कई दूसरे अंतराष्ट्रीय विद्यार्थियों से हुआ और वह नई-नई सभ्यताओं और विचारों से परिचित होने लगे। नजात साहब दूसरे विद्यार्थियों की तरह खुले दिल और दिमाग वाले थे और इसिलये भेदभाब की भावना से कोसों दूर थे। वह अपनी ज़िन्दगी को अर्थपूर्ण बनाना चाहते थे। क्योंकि वह अपने बाप-दादा के मज़हब से संतुष्ट नहीं थे, उन्होंने ईसाई धर्म की बाईबल पढ़नी शुरु की। उन्हें बाईबल की विचार धारा अपने मज़हब से ज़्यादा अर्थपूर्ण लगी इसलिये उन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और करीब एक साल उस पर नियमित रहे।

मगर अभी भी उन्हें वो शांति न मिली जिसकी उनको तलाश थी। इसलिये उन्होंने अपनी तलाश जारी रखी, और इस्लामी किताबों का अध्ययन करना शुरु कर दिया। साथ साथ मुस्लिम विद्यार्थियों से भी विचार विमर्श करते। यह बहुत प्रशंसा की बात है कि अमरीका और केनेडा की कई यूनिवर्सिटियों में बहुत ही स्वस्थ वातावरण में यहूदी, ईसाई और मुसलमान धर्म पंडितों को एकत्र करके उनके भाषण आयोजित किये जाते हैं और फिर एक ही सवाल का जवाब तीनों अपने मज़हब के दृष्टिकोण से देते हैं। इस से बहुत से विद्यर्थियों में आपसी भेदभाव की भावना दूर हो जाती है और उन्हें सही मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

नजात साहब ने कई विभिन्न ज़रियों से इस्लामी शिक्षण हासिल किया। उन्हें इस्लाम धर्म की सरलता और स्पष्टता ने बहुत प्रभावित किया। सिर्फ एक अल्लाह की पूजा का विचार उन्हें बहुत भाया। निरंतर अभ्यास से उनका दिल पूरी तरह संतुष्ट हो गया कि यही एक मार्ग सही है और उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। नजात साहब को मालूम था कि एक असली और अमली मुस्लिम बनने के लिये शादी करना ज़रुरी है। जल्दी ही उनकी यह ख्वाहिश पूरी हुई और विन्डसर में ही एक उच्च शिक्षित लड़की से उनकी शादी हो गयी। इसी दौरान उनकी पी.एच.डी. भी पूरी हो गयी और अब वह किसी काम की तलाश में थे। उनके उच्च शिक्षण के कारण मशहूर फोर्ड कम्पनी, डेटराईट ने उन्हें एक उच्च पद पर नौकरी दे दी। नजात साहब डेटरॉईट ज़िले का उपनगरीय इलाका फ़ार्मिंगटन हिल (Farmington Hill) में अपने परिवार के साथ शिफ़्ट हो गये।

उन्हीं दिनों इस इलाके में एक नई मस्जिद अस्तित्व में आई जिसका नाम ''तौहीद सेंटर ऑफ फ़ार्मिंगटन हिल' था, नजात साहब से मेरी मुलाक़ात इसी मस्ज़िद में अक्सर हो जाती। एक दिन मैंने उन्हें क़ुरआन पाक की तिलावत (पाठ) के लिये कहा तो उन्होंने जवाब दिया ''मैं क़ुरआन अरबी में नहीं पढ़ सकता,'' यह सुनकर मेरे पाँव के नीचे ज़मीन खिसक गई और मुझे यक़ीन न हुआ कि उनके जैसा ज्ञानी आदमी अरबी में क़ुरआन पढ़ने में असमर्थ है। इसका कारण बहुत साफ है कि अक्सर मुसलमान दूसरों को इस्लामी शिक्षण देने के लिये अपना वक़्त ख़र्च नहीं करते। जिसकी वजह से बहुत सारे बुद्धिमान विद्यार्थी इस शिक्षण से वंचित रह जाते हैं। सच तो ये है कि जब तक व्यक्तिगत रुप से समय की क़ुर्बानी न दी जाये, किसी को फ़ायदा नहीं पहुँचाया जा सकता, सिर्फ़ जुबानी हमदर्दी किसी काम की नहीं होती।

मैने मिसेज़ नजात से बिना झिझक पूछा ''क्या कारण है कि आपने अपने पति को अरबी वर्णमाला तक नहीं सिखायी जबकि आपकी शादी हुये कई साल गुज़र चुके हैं?'' मिसेज़ नजात मुझे कोई संतोषजनक जवाब न दे सकीं। मैनें नजात साहब से कहा ''आईये हम और आप एक आपसी

समझौता करें, आप मुझे चार हफ़्ते दें, मैं आपको गारंटी देता हूँ कि आप क़ुरआन पाक पढ़ना शुरु कर देंगे। हमने तौहीद सेन्टर में फ़जर (सुबह) की नमाज़ के बाद मिलने का फ़ैसला किया। और जैसा कि मेरा विश्वास था नजात साहब ने इन चार हफ़्तों में क़ुरआन पढ़ना सीख लिया। हमारी इन रोज़ की मुलाक़ातों का एक बड़ा फ़ायदा ये हुआ कि कुछ और लोगों ने भी इस्लामी शिक्षण हासिल करने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की। इनमें एक मेडिकल डॉक्टर साहब भी थे जो पैदाइशी अमरीकी थे और अभी तक क़ुरआन पाक के ज्ञान से वंचित थे। इस तरह और भी कई लोग इस शिक्षण प्रणाली में शामिल हो गये, इतवार के दिन इन बैठकों के बाद हम सब मिलकर मस्जिद में नाश्ता करते थे, यह बहुत अच्छा दृश्य होता था।

डॉ॰ नजात साहब अब क़ुरआन पाक की कई सूरतें (अध्याय) आसानी से और बहुत अच्छे तरीक़े से पढ़ सकते थे, मगर अब उन्हें मुझसे बेहतर उस्ताद की ज़रुरत थी। मेरे एक वृद्ध दोस्त शेख़ अलअतासी थे, जो कि शाम (Syria) के रहने वाले थे। मैंने उनसे दरख़्वास्त की कि वह डॉ॰ नजात को पढ़ाने की ज़िम्मेदारी लें, तों उन्होंने ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार कर लिया। शुरु-शुरु में वह हफ़्ते में सिर्फ़ एक दिन पढ़ाते, लेकिन दोनों को यह सिलसिला इतना अच्छा लगा कि वे हर रोज़ सुबह की नमाज़ के बाद क़रीब एक घंटे के लिये मिल बैठते। शेख़ साहब अनुभवी थे और अरबी उनकी मातृभाषा होने की वजह से नजात साहब को शब्दों का सही उच्चारण भी सीखने को मिला, जिसकी वजह से उनकी तिलावत में और मिठास पैदा हो गयी।

डॉ. नजात साहब फ़जर की नामज़ से पहले बीवी और बच्चों को छोड़कर मस्जिद आते, फ़जर की नमाज़ के बाद उस्ताद और शागिर्द दोनों को सिखाने और सीखने का यह सिलसिला इतना पसंद था कि सर्दी, बरफ़ या तूफ़ान में भी दोनों मस्जिद आने से न चूकते। शेख साहब को अपने शागिर्द पर बहुत गर्व था, वह मुझसे कहते ''नजात का उच्चारण तुमसे अच्छा है'' और यह बात सच भी थी। अब डॉक्टर नजात साहब का यह आलम था कि जहाँ से क़ुरआन खोलें वह बिना कठिनाई से उसे पढ़ सकते थे। अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ पढ़ने में उन्हें और मज़ा आने लगा। नजात साहब अब वह

समझ चुके थे कि क़ुरआन का असल उद्देश्य मार्गदर्शन है, तो अब उन्होंने पढ़ने और समझने के साथ उसको जीवन में उतारना भी शुरु कर दिया।

उन्होंने क़ुरआन की सूरतें (अध्याय) याद करना शुरु कर दी। आख़िरी बार जब मेरी मुलाक़ात हुई उस वक़्त तक वह क़ुरान का आख़री भाग (30 वां भाग) का आधा हिस्सा याद कर चुके थे। यह अक्सर देखा गया है कि किसी भी सोसायटी में स्वेच्छापूर्वक काम करने वाले बहुत कम होते हैं। लोगों को दूसरों में दोष निकालने ही से फ़ुर्सत नहीं मिलती। डॉ. नजात साहब ऐसी फ़ितरत से कोसों दूर थे। वह किसी न किसी तरह से अपने आपको क़ौम की सेवा में व्यस्त रखते। वह अकसर सुबह की नमाज़ के लिये मस्जिद खोलते हालांकि उनका घर मस्जिद से सबसे दूर था। वह कारों की पार्किंग की जगह से लेकर मस्जिद के दरवाज़े तक बर्फ़ हटाते और उसपर फिर नमक छिड़कते ताकि कोई फिसल कर ज़ख़्मी न हो जाये नजात साहब की यह सेवा मस्जिद के लिये बहुत महत्वपूर्ण थी क्योंकि फिसल कर गिरने की सूरत में कोई भी अपने माली और जानी नुक्सान के लिये मस्जिद के विरूद्ध मुक़दमा कर सकता है, जिसके कारण इन्शोरेन्स कंम्पनी मस्जिद को इन्शोरेन्स देने से मना कर सकती है। इसलिये इस देश के क़ानून को देखकर नजात साहब की यह सेवा अतुलनीय लगती थी।

हर इतवार को बच्चों के लिये मस्जिद में इस्लामी स्कूल चलाया जाता था, नजात साहब इसमें भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते। दोपहर की नमाज़ से पहले-पहले मस्जिद पहुँच कर हमेशा की तरह बर्फ़ वग़ैरा हटाते और फिर विद्यार्थी और उस्तादों के लिये मस्जिद के दरवाज़े खोलते। माता-पिता से बच्चों की फ़ीस वसूल करना भी बड़ी ख़ुबसूरती से पूरा करते और कभी किसी को नाराज़ न होने देते। वह बच्चों के लियें मिठाईयाँ ख़रीदते जो कि स्कूल के दौरान बाँटी जातीं, मस्जिद के रसोई घर को पहले अकेले साफ़ करते और रेफ़िजिरेटर में जमी हुई अनावश्यक बर्फ़ को ज़रूरत पड़ने पर निकालते रहते। इतना कुछ करते मगर कभी किसी को अपना कार्य न गिनाते।

एक बार रमज़ान में तरावीह की नमाज़ के बाद मैंने मस्जिद को बंद करना चाहा और मैंने एक-एक कर के सभी कमरों की बत्तियाँ बंद करने लगा, इस वक़्त सब लोग जा चुके थे, मर्दो के स्नान घर और वज़ू करने के कमरे में प्रवेश किया तो मैं यह देख कर हैरान रह गया कि डॉ॰ नजात साहब स्नान घर की चुपके-चुपके सफ़ाई कर रहे हैं, मैंने बहुत प्रभावित होकर उनका धन्यवाद देने की कोशिश की मगर उनको अपनी प्रशंसा भी अच्छी नहीं लगती और अक्सर ऐसे वक़्त एक धीमी सी मुस्कान के बाद वह विषय बदल देते क्योंकि ये सेवाएँ उनकी नज़र में कोई बड़ा काम न था और फिर उन का लक्ष्य तो कुछ और ही था जिसे किसी कवि ने इस तरह कहा है।

सौदागरी नहीं ये इबादत ख़ुदा की है।
ऐ बेख़बर जज़ा की तमन्ना भी छोड़ दे।

डॉ॰ साहब की सेवाएँ सिर्फ़ मस्जिद के अन्दर ही सीमित न थीं। यह मस्जिद क़रीब 2½ एकड़ पर फैली हुई थी, नजात साहब मस्जिद के घर वाले हिस्से पर हर साल खाद डालते और कीटनाशक दवाईयाँ भी मारते। इस खाद, दवाईयाँ और बर्फ़ के लिये नमक वग़ैरह का ख़र्च भी अपनी जेब से ही देना पसंद करते। नजात साहब एक दुबले पतले और लंबे जवान थे। उनकी लगन उन्हें मस्जिद के सूखे पेडों को काँटने में हिस्सा लेने के लिये और उतावला करती।

हमें डॉक्टर नजात साहब की सेवाएँ रमज़ान के महीने में और भी ज़्यादा अच्छी लगतीं। वह हर मेज़बान को अफ़तारी (रोज़ा तोड़ने का वक़्त) और खाने की योजना में मदद करते, हर खाने के बाद जगह की सफ़ाई भी खुद ही करने लगते। हर साल ईद की नमाज़ के बाद मस्जिद में समोसे और मिठाईयाँ बाँटी जातीं। नजात साहब अमरीका से केनेडा जाकर मस्जिद के लिये सस्ते दामों में समोसे ख़रीद कर लाते, किसी भी तरह से मस्जिद का फ़ायदा हो जाये यही कोशिश में वह हमेशा लगे रहते। उनका और एक ख़ास अमल यह था कि ईद की नमाज़ के बाद रंग बिरंगे ग़ुब्बारों में हवा भर कर बच्चों को देते जिस से बच्चों के दिल खिल उठते।

नजात साहब हर एक घर में प्रिय थे। वह लोगों को हर ईद पर अपने घर पर दावत देते और इस रोज़ उनके यहाँ अच्छी ख़ासी भीड़ देखने को मिलती। ईद का ख़ुत्बा देने के बाद मेरी कोशिश भी यही होती थी कि जल्द से जल्द नजात साहब के घर पहुँचूँ और स्वादिष्ट पकवानों से अपना पेट भर कर ईद की ख़ुशी को दुगना करलूँ।

एक बार मैने नजात साहब से बड़ी संजीदगी से पूछाः ''अब आपको क़ुरआन पाक और दुसरे इस्लामी संस्कारों और सिद्धान्तों का काफ़ी ज्ञान हो चुका है, सच-सच बतायें कि इस्लाम आपको कैसा लगता है?'' नजात साहब ने जवाब दिया ''इस्लाम में आकर जो ख़ुशी मुझे मिली वैसी ख़ुशी मुझे हिन्दू मज़हब या ईसाई मज़हब में कभी नहीं मिली। क़ुरआन को पढ़ने और समझने से मेरे दिल और दिमाग़ को बहुत सुकून मिलता है।

आज नजात साहब अक्सर मस्जिद में नमाज़ भी पढ़ाते हैं। इस से यह स्पष्ट है कि इस्लाम में कोई विरासत का चक्कर नहीं है। जिस किसी को भी इस्लामी ज्ञान हो और दिल में जज़्बा (उमंग) हो वह कोई भी धार्मिक कार्य कर सकता है। अल्लाह ने क़ुरआन में कहा है कि ''अल्लाह के नज़दीक तुम में सब से श्रेष्ठ वह है जिसके पास सब से ज़्यादा 'तक़वा' हो।''

इस्लाम में रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता जैसे भेद भाव के लिये कोई जगह नहीं है, क्योंकि ज्ञान और तक्वे के ज़रिये ही इन्सान दूसरों से आगे बढ़ सकता है।

मेरी यह प्रार्थना है कि ख़ुदा नजात साहब की निःस्वार्थ सेवाओं के लिये उन्हें और उनके परिवार को पुण्य अता करे, और हम सब को भी उनके जैसा एक बेहतरीन मुसलमान बनाये।

जिम

(Jim)

(जिम और उसकी बौध्द् गर्लफ्रंड का इस्लाम की तरफ़ सफ़र)

पशिचमी देशों में रहने वाले बहुत-से मुसलमान रोज़ के इस्लामी कार्यों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते हैं और मस्जिद या मदरसे का काम करना पसंद करते हैं। इन कार्यों में नये और पैदाइशी मुसलमानों में कोई फर्क़ नहीं है, क्योंकि सब ही लोग अपने-अपने तरीक़े से इनमें जुटे रहते हैं।

एक दिन तौहीद सेन्टर डेटराईट (Detroit) में यह तय हुआ कि फजर की नमाज़ के बाद हम सब कुछ कारों में तौहीद सेन्टर फार्मिंगटन हिल (Farmington Hill) जायेंगे और वहाँ पर अनावश्यक पेड़ों और पेड़ों की शाखों को गैस की आरियों से काटेंगे, फिर उनके छोटे छोटे बन्डल बना कर सड़क के किनारे रख देंगे ताकि नगरपालिका वाले उन्हें उठा ले जायें, इस तरह से इस मस्जिद के कैम्पस की काफ़ी कुछ सफ़ाई हो जायेगी।

सुबह की नमाज़ के बाद हम दो कारों में निकले। जिम एक नया मुसलमान था और मस्जिद में भी इधर कुछ दिनों से दिखाई दे रहा था। वह मेरी कार में बैठ गया। जिम क़रीब 22 साल का एक सुलझा हुआ नौजवान था और काफ़ी बुद्धिमान भी। मैंने उससे पूछा ''वह क्या चीज़ थी जिसने तुम्हें इस्लाम की तरफ़ खींचा?'' जिम ने इस सफ़र के दौरान मुझे अपनी बीती ज़िन्दगी के बारे में विस्तार पूर्वक बताया। उसने कहा :

''मैं एक ईसाई घराने में पैदा हुआ और अपने माता पिता के साथ एक चर्च में जाया करता था। मेरे माता पिता इस चर्च में भक्ति और अराधना करने के लिये अपनी कमाई का क़रीब दस प्रतिशत चर्च को देते। मेरे माता पिता इस चर्च के विचार और पूजा के तरीक़ों से सहमत न थे इसलिये उन्होंने इससे अलग विचारों वाले एक दूसरे चर्च से संबंध जोड़ लिया। यहाँ भी उन्हें अपनी कमाई का क़रीब आठ प्रतिशत हर महीने देना पड़ता था। इस चर्च की विचार धाराओं से मेरे माता पिता संतुष्ट थे, इसलिये वह इसी चर्च से पूरी तरह जुड़ गये। मगर कुछ सवाल मेरे दिमाग़ में जन्म ले चुके थे।

मेरी सबसे बड़ी उलझन यह थी कि पूजा करने की अनुमति के लिये ज़बरदस्ती पैसे क्यों दिये जायें? मुझे अब ऐसी जगह की तलाश थी जहाँ पर ख़ुदा की इबादत के लिये पैसे न लगते हों।

मैने हाई स्कूल के बाद यूनिवर्सिटी में प्रवेश किया। यहाँ मैने कई अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों से पूछा कि क्या तुम्हें भी पूजा करने के लियें पैसे देने होते हैं? सब ने कहा बिल्कुल नहीं, बल्कि हमारे पूजा घरों में सब को बराबर का अधिकार है। यहाँ पर यह बताना मैं ज़रूरी समझता हूँ कि पश्चिमी देशों में यूनिवर्सिटी कैम्पस के माहौल और वातावरण में बहुत आज़ादी देखने को मिलती है। जिसका परिणाम यह होता है कि बिगड़ने वाले बिगड़ जाते हैं और बनने वाले बन जाते हैं। विद्यार्थियों के बीच विचारों के आदान प्रदान का ढ़ंग भी बड़ा निराला होता है क्योंकि वे किसी के सवाल का जवाब न तो इतना छोटा देते हैं कि दूसरे के पल्ले कोई बात न पड़े, और न ही बाल की खाल निकालते हैं जिस से सवाल करने वाला उकता जाए, इस तरह से सवाल करने वाले का बार-बार सवाल करने को मन चाहता है। और न ही ये विद्यार्थी अपने विचारों को स्वीकार करने के लिये कोई ज़ौर ज़बरदस्ती से काम लेते हैं। इस तरह एक स्वस्थ वातावरण में विचारों का आदान प्रदान देखने को मिलता है। पूजा के लिये पैसे देने का रिवाज जिम को कभी पसंद न आया और जब उसे मालूम हुआ कि ऐसा धर्म भी है जहाँ पर यह रिवाज नहीं है, उसने इस धर्म के बारे में छान बीन करना शुरु कर दी। जिम अपने ईसाई गिरजाघरों से वैसे ही ख़ुश न था और उसने बहुत सालों से वहाँ जाना भी छोड़ दिया था। जिम ने यूनिवर्सिटी में मुसलमान विद्यार्थियों से उनके धर्म के बारे में पूछ-ताछ करनी शुरु कर दी। अपनी बाक़ी कहानी जिम ने यूँ सुनाई।

"मैं और मेरी गर्ल फ्रेन्ड (girl friend) एक किराये के मकान में रहते थें, मेरी गर्ल फ्रेन्ड बौध धर्म को मानने वाली एक महिला थी। उसने सारे घर की सजावट मूर्तियों से की थी और इस तरह घर में जगह जगह पर मूर्तियाँ रखी हुई थी। लेकिन न तो वह पूरी तरह से अपने धर्म पर अटल थी और न ही मैं अपने ईसाई धर्म पर स्थिर था। उसने मेरी बातचीत से समझ लिया कि मुझे किसी नई राह की तलाश है। वह एक बार क्रिसमस के त्यौहार पर मेरे लिये गिफ्ट ख़रीदने के लिये बाज़ार गयी।"

क्रिसमस एक ऐसा त्यौहार है जिसमें धर्म की कोई बंदिश नहीं हर कोई इसमें किसी न किसी तरीक़े से ज़रूर हिस्सा लेता है। उदाहरण के तौर पर, यहूदी ईसा (अ॰ स॰) को नहीं मानते मगर क्रिसमस के वक़्त वे भी आगे-आगे रहते हैं और अपनी दुकानों और दफ़्तर की इमारतों को ख़ूब सजाते हैं। इस त्यौहार के मौक़े पर लोग अपने दोस्तों को भेंट भी दिया करते हैं।

जिम ने कहा ''मेरी गर्ल फ्रेन्ड ने मार्केट में एक किताब देखी जो कि उसे फ़िलोसोफ़िकल (Philosophical,) दार्शनिक लगी, उसने सोचा कि जिम हर वक़्त अनोखी बातें करता है, शायद, उसको यह किताब पसंद आ जाये। उसने वही किताब मेरे लिये क्रिसमस की भेंट के रूप में ख़रीद ली। मैंने वह किताब पढ़नी शुरु की, तो मालूम हुआ कि यह तो क़ुरआन पाक का अंग्रेज़ी में अनुवाद है। मुझे यह किताब बड़ी दिलचस्प लगी और मैं उसे मन लगाकर पढ़ने लगा। हर रोज़ मेरे दिल में नये-नये सवाल पैदा होते और मुझे मुस्लिम विद्यार्थियों से उनके संतोषजनक उत्तर मिल जाते। इस तरह धीरे- धीरे मेरा दिल और दिमाग़ दोनों इस्लाम के लिए तैयार हो गया। मैंने मुस्लिम स्टूडेंन्ट एसोसिएशन के सदस्यों से अपनी इच्छा जताई कि मैं भी इस्लाम में प्रवेश करना चाहता हूँ। उन्होंने मुझे कलमा-शहादत पढ़ाया और अल्लाह की मेहरबानी से मैं मुसलमान हो गया।

मुझे अच्छी तरह मालूम था कि नमाज़ इस्लाम का महत्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्य है। मैं कुछ नमाज़ें युनिवर्सिटी कैम्पस में पढ़ता और बाक़ी अपने घर में। मैंने अपनी गर्ल फ्रेन्ड से कहा कि ड्रॉईंगरूम से सारी मूर्तियाँ निकाल दो, क्योंकि मुझे यहाँ नमाज़ पढ़नी होती है। उसको मेरी यह बात बहुत नापसंद लगी क्योंकि अपने धर्म में हस्तक्षेप कोई सहन नहीं करता मगर फिर भी उस बेचारी ने मुझे ख़ुश करने के लिये बैठक से सारी मुर्तियाँ हटा दी। अब जैसे-जैसे मैं इस्लाम में रचता गया मैं अपनी गर्ल फ्रेन्ड से उतना ही दूर होता गया। हमारी कई बार नोक झोंक होती और वह बार-बार कहती कि ''मैं हर तरह से तुम्हें ख़ुश रखने की कोशिश करती हूँ मगर तुम मुझसे हमेशा उदास रहते हो। आख़िर क्या कारण है कि तुम मुझसे दूर-दूर होते जा रहे हो? मैंने उससे बड़ी संजीदगी से कहा 'जो कुछ तुम कहती हो सही है लेकिन अब मैं मुसलमान हूँ और एक गैर मुस्लिम से विवाह नहीं कर सकता'। वह ख़ूब समझती थी के मैं व्यक्तिगत रूप से किसी को कभी तकलीफ़ नहीं देता और मेरा व्यवहार भी सबके साथ बहुत भला होता है। वह मुझे किसी क़ीमत पर

छोड़ना नहीं चाहती थी। उसने मुझसे पूछा कि 'मुझे क्या करना होगा जिससे हमारा रिश्ता बना रहे?' मैने जवाब दिया 'तुम्हे मुसलमान बनना होगा।' फिर पूछने लगी 'इस्लाम क्या है?' मैंने इस्लाम की मोटी-मोटी बातें उसे बताई। इस थोड़े समय में इस्लाम की सारी बातें उसके दिल में न उतरी लेकिन वह फिर भी मुझे ख़ुश करने के लिये मुसलमान बन गई और उसने ख़ुद अपने हाथों से घर को सारी मुर्तियों से आज़ाद किया। हम दोनों शादी के बाद स्थानीय मस्जिद में जाया करते। इस तरह दिन गुज़रते गये। मैंने देखा कि मेरी पत्नी पाँचों वक़्त की नमाज़ें पढ़ने में कोताही कर रही है, मैने उससे ग़ुस्से में कहा तुम किस तरह की मुसलमान हो कि पाँच वक़्त की नमाज़ें भी नहीं पढ़ सकती, वह कहने लगी मैं कोशिश तो कर रही हूँ। मैंने एक दिन फिर यही बात दोहराई तो वह रोने लगी और उस शहर की मुसलमान औरतों से उसने मेरी शिकायत की। यहाँ के स्थानीय इस्लामी लीडरों को हमारी यह आपसी परेशानी की ख़बर मिली तो उन्होंने एक पढ़े लिखे वृद्ध पति-पत्नी को हमारी समस्याओं को सुलझाने के लिये हमारे पास भेजा। उन्होंने मुझे बताया कि मेरी पत्नी एक नव-मुस्लिम युवती है और इस्लाम धीरे-धीरे दिल और आत्मा में प्रवेश करता है। इसलिये मुझे इतनी सख़्ती से काम नहीं लेना चाहिये। इन बातों से मेरे व्यवहार में बदलाव आया और मैं अब नम्रता से काम लेने लगा। इस्लाम स्वीकारने से पहले मैं अपना काफ़ी समय अपने पड़ोसी के युवको के साथ बिताया करता था। जब भी हम लोग जमा होते तो एक दूसरे के विचारों को सुनने के बजाय अपनी-अपनी बात मनवाने में लगे रहते और एक पागल ख़ाने जैसा दृश्य हो जाता जहाँ पर सब एक दूसरे पर चिल्ला रहे होते हैं। इस्लाम में प्रवेश करने के बाद भी मैंने कुछ बैठकों में हिस्सा लिया। मेरे दोस्त मुझे ख़ामोश देखकर आश्चर्यचकित होगये। मैं बात तभी करता जब बाक़ी लोग मुझे सुन रहे होते। मेरे व्यवहार और सदाचार ने इतना बड़ा बदलाव देखकर वह हक्का बक्का रह गये। मुझे भी इन बेमक़सद महफ़िलों में घुटन सी होने लगी।

मेरे माता-पिता के और मेरे विचारों में भी अच्छा ख़ासा अंतर था। मेरे लिये इस वातावरण में रहना मुश्किल हो रहा था। मैं उनके दबाव से बाहर निकल कर इस्लाम धर्म पर पूरी तरह से अमल करना चाहता था। इसलिये मैंने न सिर्फ वह शहर ही बल्कि अपने माता-पिता और दोस्त-यारों को भी छोड़ दिया और यहाँ डेटराईट (Detroit) में आगया। मेरी बीवी यूनिवर्सिटी

का शिक्षण पूरा करने के लिये वही रुक गई। यहाँ आया तो मेरे पास कुछ भी न था। मैं अपने यूनिवर्सिटी के पुराने साथी अहमद के पास आया हूँ अहमद मलेशिया और इन्डोनेशिया की मुस्लिम संगठनों में अधिकारी के पद पर है। उसने मेरे लिये रहने, खाने यहाँ तक कपड़ो की भी व्यवस्था सब अपने ख़र्च पर कर दिया है। आप मुझे अक्सर उसके साथ मस्जिद आते हुये देखते हैं। मुझे इस मस्जिद में बहुत शांति मिलती है।

मस्जिद के नमाज़ी, जिम से मिलकर बहुत ख़ुश हुए और उन्होंने उसे कई तोहफ़े भी दिये। यहाँ उसे एक अच्छा ख़ासा काम भी मिल गया। कुछ दिनों के बाद उसने बताया ''मैंने काम छोड़ दिया है क्योंकि मैं नया कर्मचारी हूँ इसलिये कारखाने का मालिक मुझे जुमा की नमाज़ पढ़ने के लिये छुट्टी नहीं दे रहा था।''

एक दिन जिम ने मुझसे कहा, ''क्या मैं मस्जिद से अंग्रेज़ी अनुवाद क़ुरआन पाक ख़रीद सकता हूँ?'' मैने उसे बताया कि यह नये मुस्लिमों के लिये फ्री है, जितनी कॉपी चाहिये ले लो। उसने कहा ''मुझे एक अपनी माँ के लिए चाहिये, हो सकता है कि मेरी तरह इसको पढ़कर उनका भी उध्धार हो जाये, इसके अलावा कुछ कॉपियाँ अपने दोस्तों के लिये भी चाहिये।'' मैंने उससे कहा ''तुम किसी से पूछे बग़ैर यहाँ से क़ुरआन की कॉपियाँ ले सकते हो''।

इसी दौरान जिम की एक तबलीग़ी ग्रुप से मुलाक़ात हो गयी, इस ग्रुप की एक अच्छी बात ये है कि ये लोग नये मुसलमानों का बड़े उत्साह से स्वागत करते हैं। उन्हें न सिर्फ़ आरंभिक शिक्षण देते हैं बल्कि इस्लामी संस्कार और वातावरण से भी ख़ूब परिचित कराते हैं। जिम इस तबलीग़ी ग्रुप से जुड गया और उनके साथ कई ज़िलों और शहरों में शिक्षण के सिलसिले में जाने लगा। कई महीनों के बाद एक आध रात के लिये डेटराईट आता तो मस्जिद तौहीद में उससे मुलाक़ात हो जाती थी। ऐसा लगता है कि उसने अपनी जवानी अपने मज़हब की सेवा में क़ुर्बान कर दी है।

***

रेन्डा टोशनर

(Renda Toshner)

(एक तुर्की-अमरीकी आर्कीटेक्ट)

रेन्डा टोशनर अमरीका में एक तुर्की घराने में पैदा हुए। इस तरह से वह एक पैदाइशी अमरीकी नागरिक थे। उनके माता-पिता दोनों डॉक्टर थे और बहुत वर्षों से अमरीका में ही रह रहे थे, साथ ही अपने पेशे से वहाँ की जनता की सेवा भी कर रहे थे।

रेन्डा साहब के माता-पिता मुसलमान थे, इसलिये रेन्डा साहब एक पैदाइशी मुस्लिम थे। लेकिन रेन्डा साहब के घर का वातावरण बिल्कुल इस्लामी न था, और वह अपनी ज़िन्दगी की शुरूआत से ही इस्लाम से बहुत दूर थे। जब वह जवान हुए और युनिवर्सिटी पहुँचे तो पहली बार इस्लाम से परिचित हुए। उनकी ज़िन्दगी की कहानी हम सब के लिये एक बेहतरीन उदाहरण है। इससे पहले कि मैं उनकी कहानी का वर्णन करूँ मैं समझता हूँ कि इस शहर में रहने वाली तुर्की क़ौम (समुदाय) के बारे में संक्षेप में कुछ बताऊँ जिससे रेन्डा साहब की आरंभिक ज़िन्दगी को समझने में आसानी होगी।

अमरीका के मिशिगन (Michigan) ज़िले में एक मशहूर शहर है, जो डेटराईट (Detroit) के नाम से जाना जाता है। तुर्की लोग इस शहर में क़रीब साठ साल पहले आऐ। अब उनकी तीसरी पीढ़ी यहाँ पर उन्नति कर रही है। सुशिक्षित होने की वजह से यहाँ पर ये लोग बहुत सफल हैं। जो नौकरी में हैं वो बहुत ऊँचे ओहदों पर काम कर रहे हैं, और जिन्होंने अपना निजी कारोबार शुरु किया है वो भी बहुत कामयाब हैं। इसलिये इनका परिचय सरकार के उच्च अधिकारियों से भी है और व्यापार जगत में भी ये लोग आगे आगे हैं। इनकी आर्थिक अवस्था बहुत स्वस्थ है और समाज में रहन- सहन का स्तर भी बहुत ऊँचा है। मेरा परिचय उनसे 1990 के आस

पास हुआ, मैं इस इलाक़े की एक मस्जिद में अवैतनीक तौर पर ईमाम का काम कर रहा था। इस मस्जिद का नाम 'तौहीद सेन्टर ऑफ फ़ार्मिगटन हिल' है। इमाम होने की वजह से मुझे तुर्की भाईयों के कुछ लोगों की जनाज़ा (अंतिम संस्कार) की नमाज़ पढ़ाने का मौक़ा मिला। बाद में मुझे उनके तुर्की सोशल क्लब में भी आमंत्रित किया गया और उनके घरों में भी उठने-बैठने का अवसर मिला। मुझे यह देखकर बहुत अचरज हुआ कि इनमें से कई वर्ग अमरीकी सोसायटी में पूरी तरह घुल-मिल गये हैं। मुझे एक तुर्की भाई ने अपनी बेटी और पोती से परिचित कराया और बिना झिझक कहा ''मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि मेरी यह पोती खाने की मेज़ पर दुआ मांगती है तो अपने हाथों से वही हरकतें करती है और ज़ुबान से वही अल्फाज़ (शब्द) कहती है, जो ईसाई लोग कहते हैं, बेचारी इस्लामी आदतों और तरीक़ों से बिल्कुल अन्जान है।''

यहाँ यह बताना भी ज़रूरी है कि ये अवस्था सिर्फ़ तुर्की ग्रुप की ही नहीं बल्कि अमरीका में कई और मुसलमान ग्रुप दौलत और शोहरत की दौड़ में गुम होकर अपनी वास्तविकता खो चुके हैं। मगर इन लोगों में ऐसे भी लोग हैं जो अमरीका में रहते हुए भी अपनी मातृभूमि के मुसलमानों से बेहतर मुसलमान हैं और इस्लाम की राह पर पूरी श्रधा से स्थिर हैं। इसी तरह से कुछ अमरीकी बच्चे भी इस्लामी उपदेशों पर अपने माता-पिता से बढ़ कर अमल कर रहे हैं।

''रैन्डा साहब भी ऐसे ही एक धनी मुस्लिम घराने में पैदा हुए मगर इस्लामी शिक्षण से वंचित रहे। अपने हाई स्कूल के शिक्षण के बाद उन्होंने यूनिवर्सिटी में प्रवेश किया, जहाँ उनका परिचय अंतर्राष्ट्रीय मुसलमान विद्यार्थियों से हुआ। यहाँ पर एक आज़ाद वातावरण में उन्हें इस्लाम को जानने और समझने का मौका मिला। उन्हें आश्चर्य हुआ कि एक मुसलमान घराने में पलने और बढ़ने के बाद भी वह इस्लाम के ज्ञान से कितने दूर हैं! यूनिवर्सिटी में अपने साथियों से विचार विमर्श ने उनकी दिलचस्पी और बढ़ा दी। उन्होंने इस मज़हब का विस्तारपूर्वक अध्ययन करना शुरु कर दिया। रेन्डा साहब जो जो पढ़ते उसे अमल में लाते। धीरे-धीरे उन्होंने अपने आप को इस्लाम के साँचे में पुरी तरह ढ़ाल लिया।

रेन्डा साहब दुनयावी शिक्षण में भी श्रेष्ट थे। उन्होंने आरकीटेक्ट इंजीनियरिगं (वास्तु-निर्माता) का शिक्षण प्राप्त किया फिर अमरीकी लाईसेन्स के लिये परीक्षा में बैठे। यह देखने में आया है कि अकसर लोग इस परीक्षा में 3 या 4 प्रयासों के बाद ही सफल हो पाते हैं। लेकिन रेन्डा साहब ने एक प्रयास में ही इस परीक्षा में सफलता प्राप्त कर ली और मिशीगन (Michigan) ज़िले के शहर एनारबोर (Anarbor) में एक बड़ी कंपनी में काम करने लगे।

धीरे-धीरे रेन्डा साहब ने अपने इस्लामी ज्ञान में बहुत उन्नति कर ली और इस शहर की मस्जिद से भी अपना रिश्ता जोड़ लिया। फिर रेन्डा साहब के व्यवहार में एक और बदलाव देखने को मिला; उन्होंने अब इस्लामी पोशाक पहनना शुरु कर दिया क्योंकि वह हर रुप से मुसलमान दिखना चाहते थें। यह इस्लामी-तुर्की पोशाक उनके शरीर पर बहुत भला लगता। वह अमरीकी संस्था में काम के दौरान भी यही पोशाक पहनते। एक दिन मैंने उनसे पूछा कि ''क्या आपकी संस्था आपके उस पोशाक का विरोध नहीं करती क्योंकि आप उनके काम काज के सिलसिले में कई जगहों पर उनका प्रतिनिधित्व करते हैं?'' रेन्डा साहब ने जवाब दिया कि ''कंपनी के मालिक को मुझे इसी पोशाक में स्वीकार करना होगा, मैं सिर्फ़ नौकरी के लिये अपनी असलियत नहीं बदल सकता।'' मैंने फिर पूछा कि क्या आपके इस्लामी पोशाक की वजह से आपके साथ काम करने वाले आप से पक्षपात तो नहीं करते। रेन्डा साहब ने बड़ी सरलता से जवाब दिया ''यह उनकी व्यक्तिगत समस्या है में उनकी पसंद या नापसंद की परवाह नहीं करता।''

मुझे ख़ुद भी रेन्डा साहब का यह लिबास बहुत पसंद था, यहाँ तक कि एक दिन मैंने उनसे विनती की कि मुझे भी तुर्की ढंग की पगड़ी बांधना सिखाएँ।

रेन्डा साहब मस्जिद से तो जुड ही चुके थें मगर साथ ही इस्लाम के प्रचार के लिये भी वक़्त निकाल लेते थे। वह इस ज़िले के क़ैदियों से हर हफ़्ते मिलते और उन्हें इस्लाम का शिक्षण देते। इन जेलों में उनका अनुभव बहुत सकारात्मक रहा। उनका विचार था कि इन क़ैदियों को इस्लामी साहित्य की छोटी-छोटी पुस्तकें देनी चाहिये जिसमें इस मज़हब का संक्षिप्त रूप से

ख़ुलासा किया गया है। इसलिये उन्होंने ख़ुद ऐसी छोटी-छोटी पत्रिकाएँ लिखीं और अपने निजी ख़र्च से उन्हें प्रकाशित भी किया। प्रकाशन से पहले उनकी समीक्षा के लिये उन्होंने मुझे दिया। मैंने उन पत्रिकाओं को नए मुसलमानों के शिक्षण के लिये बहुत योग्य पाया। अल्लाह उनकी इन मेहनतों को क़ुबूल करे।

अकसर शहरों से जेलों का अंतर बहुत ज़्यादा होता है, यहाँ आने जाने में काफ़ी समय लग जाता है। उसके बाद एक-एक क़ैदी को बहुत धैर्य और सहनशीलता से निमंत्रण देना होता है, इस तरह क़रीब आधा या फिर कभी-कभी पूरा दिन भी लग जाता है। रेन्डा साहब हर हफ़्ते नए जोश और फूर्ति से इस काम के लिये जाते और बहुत ही संतुष्ट होकर लौटते। अल्लाह ही जानता है कितने क़ैदियों ने उनके हाथों इस्लाम स्वीकार किया।

उनके माता-पिता ने अपनी सेवाओं से निवृत्ति के बाद तुर्की जाने का फ़ैसला कर लिया। मगर रेन्डा साहब ने अमरीका में ही रहना पसंद किया क्योंकि उन्हें एनारबोर (Anarbor) की ज़िन्दगी से और यहाँ के मुसलमानों से बहुत लगाव हो गया था। रेन्डा साहब की मस्जिद बहुत विशाल थी, रेन्डा साहब ने वहाँ के मुअज़्ज़िन (अज़ान देने वाला) का काम भी संभाल लिया और अक्सर वही अज़ान दिया करते। इसी मस्जिद में एक जुमा को मैं भी ख़ुत्बा (प्रवचन) दिया करता था। मुझे याद है कि मैंने एक बार अपने ख़ुत्बे में पैगम्बर यूसुफ़ (अ॰ स॰) की कहानी सुनाते हुए श्रोतागण को बताया कि किस तरह से यूसुफ़ (अ॰ स॰) के भाईयों ने यूसुफ़ (अ॰ स॰) की क़मीज़ को बकरी के ख़ून से रंग के अपने पिता को यह साबित करने की कोशिश की कि उन्हें जंगली जानवरों ने खा लिया है। बाद में जब अज़ीज़ की पत्नी पैग़म्बर यूसुफ़ को मोहने में असफल रही तो उसने बदला लेने के लिये उनपर झूठा आरोप लगाया तब भी यूसुफ़ (अ॰ स॰) की कमीज़ से ही साबित हुआ कि अज़ीज़ की पत्नी झूठी है और यूसुफ़ (अ॰ स॰) पवित्र हैं। कुछ काल के बाद यूसुफ़ (अ॰ स॰) की कमीज़ ही के ज़रिये उनके पिता की खोई हुई आँखों की रोशनी (दृष्टी) लौट आई। इसके बाद मैंने बयान में कहा कि अगर यूसुफ़ (अ॰ स॰) की क़मीज़ से ऐसे चमत्कार हो सकते हैं तो उस व्यक्ति का क्या कहना जो यह क़मीज़ पहनते थे। रेन्डा साहब को ये बातें बहुत पसंद आई। जुमा की नमाज़ के बाद जब मैं घर पहुँचा तो उन्होंने

मुझसे फ़ोन पर पूछा ''क्या ये तुम्हारे अपने विचार हैं?'' मैंने उन्हें बताया कि ''बिल्कुल नहीं क्योंकि मैं कोई धर्म पंडित नहीं, और जो कुछ मैं कहता हूँ वह 'तफ़सीर' (क़ुरआन की व्याख्या/स्पष्टीकरण जो इस्लाम के विद्वानों ने की है) की किताबों से ही कहता हूँ और अपनी तरफ़ से कुछ नहीं जोड़ता।

रेन्डा साहब ने फ़ार्मिंगठन हिल (Farmington Hill) मस्जिद बनाने में भी बहुत मुख्य भूमिका निभाई। इस मस्जिद की ज़मीन करीब $2\frac{1}{2}$ एकड़ है, उन्होंने मस्जिद और कारों की पार्किगं के लिये विभिन्न नकशे तैयार किये। वर्तमान मस्जिद उन्हीं के नकशे के अनुसार निर्माण की गई है। मुझे इन कामों का पहले कोई अनुभव न था। रेन्डा साहब ने इसमें दिल लगाकर काम किया जिस्से मस्जिद तो ख़ूबसूरत बनी ही, साथ में हमें हज़ारों डॉलर की बचत भी हुई।

रेन्डा साहब का व्यक्तिगत जीवन अतुलनीय है। अपनी शादी के लिये वह तुर्की गये। अपने माता-पिता से उन्होंने शादी के बारे में कोई विचार विमर्श नहीं किया, क्योंकि उन्हें पैसे वाले या ऊँचे घराने में विवाह नहीं करना था। बल्कि एक साधारण घराने की एक लड़की को उन्होंने ख़ुद पसंद कर लिया। उन्हें मालूम था कि उनकी पत्नी इस्लाम से बिल्कुल अपरिचित है मगर उन्होंने मन में ठान लिया कि वह उसे इस्लाम का पूर्ण ज्ञान देंगे। रेन्डा साहब यह जानते थे कि पैग़म्बर मोहम्मद (स.अ.व.) और दूसरे पैग़मबरों को अल्लाह का हुक्म था कि वे पहले अपने घर वालों को धर्म संबंधी ज्ञान और आदेश दें।

रेन्डा साहब ने अपनी पत्नी को भी इस्लाम की दौलत से माला-माल कर दिया। अब उनकी पत्नी इस्लामी तौर तरीकों से ना सिर्फ़ परिचित थीं बल्कि उनपर पूरी तरह अमल भी करती थीं। दोनों मिल कर एनारबोर में एक सुखी जीवन बिताने लगे और इसी दौरान अल्लाह ने उन्हें दो ख़ूबसूरत बेटियाँ दीं।

रेन्डा साहब बातें कम और काम ज़्यादा करते थे। वह इस्लामी कार्यो में और भी बढ़ कर हिस्सा लेना चाहते थे। लेकिन यह वह समय था जब बोसनिया (Bosnia) की जंग अपने शिखर पर थी, हर रोज़ हज़ारों मुसलमान शहीद हो रहे थे, मुसलमान औरतों का अपमान किया जा रहा था और बच्चें भूख से बिलबिला रहे थे। इन तमाम लोगों की मदद के लिये दुनिया के कई

देशों के मुसलमान नौजवान बोसनिया जा रहे थे। रेन्डा साहब भी बोसनिया के यतीम बच्चों की मदद करना चाहते थे। इसलिये वह अपनी पत्नी और बच्चों को एनारबोर (Anarbor) शहर में छोड़ कर ख़ुद बोसनिया चले गऐ और अपने परिवार के लिए तुर्की के एक विद्यार्थी को संरक्षक बना दिया। रेन्डा साहब ने बोसनिया जाने से पहले मुझे फ़ोन किया। अलविदा कहते हुए, बड़े सुकून और शांति के साथ उन्होंने अपने इस निर्णय की वजह बताई और अपने परिवार के संरक्षक की जानकारी भी दी। फ़ोन पर उन चंद मिनटों की बातचीत से मैं समझ गया कि रेन्डा साहब अपने इरादे (संकल्प) में पक्के हैं। मैंने उन्हें अपनी तरफ़ से शुभकामनाएँ दीं और अलविदा कहा।

रेन्डा साहब जल्द ही बोसनिया पहुँच गये। कुछ समय बाद हमें ख़बर मिली कि वह शहीद हो गये हैं। उनका अंतिम संस्कार वहीं पर किया गया।

एनारबॉर शहर के लोगों को रेन्डा साहब पर बहुत गर्व था, रेन्डा साहब की पवित्रता हर एक के दिल में घर कर चुकी थी। इस शहर के लोगों ने क़रीब साठ हज़ार डॉलर जमा किये और रेन्डा साहब के मासूम बच्चों के भावी कॉलेज शिक्षण के लिये एक ट्रस्ट स्थपित किया।

रेन्डा साहब की पत्नी एक शरीफ़ और पवित्र महिला हैं। अपने पति की शहादत के बाद उनका इस्लाम से लगाव और बढ़ गया। वह क़ुरआन पढ़ने के साथ उसे याद भी कर रही हैं। मगर अपने इस अमल का चर्चा नहीं होने देतीं। उनका दूसरों के साथ व्यवहार, बच्चों की परवरिश का तरीक़ा और घर का पवित्र वातावरण यह सब एक शहीद की पत्नी होने का सबूत पेश करती है। रेन्डा साहब की दोनों बेटियाँ भी उन्हीं की तरह बुद्धिमान और समझदार हैं और अपनी माँ की मेहनत से इस्लामी वातावरण में बड़ी हो रही है।

रेन्डा साहब के माता-पिता तुर्की में हैं और उन्हें गर्व है कि उन्होंने एक शहीद को जन्म दिया, इसी तरह फ़र्मिंगटन हिल्स मिशिगन, की तौहीद मस्जिद में नमाज़ पढ़ने वाले मुसलमान भी अल्लाह को धन्यवाद देते हैं क्योंकि उनकी मस्जिद का नक़शा भी उसी शहीद ने बनाया था। दुआ है कि अल्लाह रेन्डा साहब को स्वर्ग में श्रेष्ठ स्थान अता करे।

डोनालड फ़्लड

(Donald Flood)

(एक अंग्रेज़ी भाषा का अमरीकी उस्ताद)

हर सोसायटी में कुछ ख़ूबियाँ होती हैं और कुछ ख़ामियाँ भी। अमरीकी सोसायटी की यह ख़ूबी है कि यहाँ पर हर व्यक्ति अपने आप को बहुत आज़ाद महसूस करता है और यही वजह है कि वह हर फ़ैसला अपनी तबीयत के मुताबिक़ करता है। यहाँ तक कि घरेलू ज़िन्दगी में भी अक्सर माता-पिता अपने बच्चों की मर्ज़ी का बहुत ख़्याल रखते हैं और उनके विचारों का बहुत सम्मान भी करते हैं। जिसकी वजह से बच्चे अपनी ज़िन्दगी के फ़ैसले ख़ुद ही लेते हैं। हमारे दोस्त डॉन इसी सोसायटी की पैदावार हैं, उन्होंने मुझे अपनी कहानी यूँ बयान की :–

नई संस्कृति की झलकियाँ

मैं अमरीका के शहर ट्रेन्टन, न्यू जर्सी (Trenton, New Jersey) में पैदा हुआ। मेरे पिताजी इंजीनियर थे और काम के सिलसिले में उनका तबादला विभिन्न देशों और प्रांतों में होता रहता। जैसे कि मैंने अपनी शुरुआत की तालीम इंडियाना (Indiana) में शुरु की लेकिन हाई स्कूल के दौरान पिता जी को एक दूसरे मुल्क ब्राज़ील (Brazil) जाना पड़ा। मैं अपने माता-पिता के साथ ब्राज़ील में 6 महीने रहा। मुझे यहाँ एक बिल्कुल नई और अनोखी संस्कृति नज़र आई। यहाँ की भाषा भी अलग थी और यहाँ के रस्म और रिवाज भी। पहली बार मुझे अहसास हुआ कि अमरीकी ज़िन्दगी से हट कर भी ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़े हैं। मुझे ये नई भाषायें अच्छी लगी इसलिये मैंने पुर्तगाली (Portuguese) और स्पेनीश (Spanish) ये दोनों भाषायें सीख लीं। इस वक़्त मैं पुर्तगाली ज़ुबान भूल चुका हूँ मगर आज भी स्पेनी ज़ुबान से अपना काम चला लेता हूँ।

जब मैं माता-पिता के साथ वापस अमरीका आया, तो मैंने हाई स्कूल की बाक़ी पढ़ाई इंडियाना (Indiana) में ही पूरी की। इसके बाद मैंने टेक्सास की यूनिवर्सिटी (University of Texas) में बिज़नेस एडमिनिस्ट्रेशन (Business Administration) में दाख़िला ले लिया, ताकि भविष्य में एक अच्छी नौकरी हासिल कर सकूँ।

मेरी दिलचस्पी में तबदीली

एक दिन मैं अपने घर के आँगन में बैठा लैटिन अमरीका (Latin America) की संस्कृति के बारे में एक किताब पढ़ रहा था। इसके अध्ययन से मुझे महसूस हुआ कि बिज़नेस एडमिनिस्ट्रेशन बहुत फीका विषय है और लैटिन अमरीका की संस्कृति बहुत दिलचस्प हैं। अगले ही दिन मैं कॉलेज गया और अपना विषय बदल कर लैटिन अमरीका संबंधित कुछ विषय चुन लिये। जैसा कि मैंने पहले भी बताया है, मेरे माता-पिता ने मेरे इस निर्णय पर कोई टिप्पणी न की और हमेशा की तरह मुझे अपने हाल पर छोड़ दिया। अब मैंने पब्लिक लाइब्रेरी से कई और संस्कृतियों जैसे कि बुद्धमत, हिन्दुत्व इत्यादी पर किताबें भी हासिल करलीं ताकि दुनिया के विभिन्न प्रांतों में बसने वाले इन्सानों की सोच और उनके जीने के तरीक़े समझ सकूँ।

एक अजीब घटना

कॉलेज में मेरा एक हिंदू दोस्त था। उसने हमें बताया कि आज शाम एक चर्च में घर का पका हुआ खाना है और हमें उसमें शामिल होने की दावत भी मिली है। उसने मुझसे यह भी वादा किया कि उसके साथ चलने पर वह मुझे उसके एक सऊदी दोस्त से भी परिचित करायेगा। तो हम वहाँ पहुँच गये। खाना बहुत स्वादिष्ट था और हमने पेट भर कर खाया। खाने के बाद एक पादरी साहब खड़े हुये और बोर्ड पर लिखी हुई पंक्तियाँ गा-गा कर पढ़ने लगे और हमें भी साथ-साथ दोहराने को कहा। यह देखकर हमारा सऊदी दोस्त अबू हुसैन फुर्ती से खड़ा हो गया और हमें बाहर निकल चलने के लिये इशारा करने लगा। हमारी मेज़बान लड़की ने काफ़ी कोशिश की कि हम रुक जायें लेकिन अबू हुसैन ने एक न सुनी और हम लोग चर्च के बाहर आगये। इस घटना के बाद हम लोग और क़रीब हो गये और हमने यह फ़ैसला किया कि एक मकान किराये पर लेकर साथ में ज़िन्दगी बसर करेंगे।

कुछ दिनों बाद एक ईरानी विद्यार्थी भी हमारे साथ उस मकान में रहने लगा। इस तरह से मुझे कई संस्कृतियों को क़रीब से देखने का मौक़ा मिला। मुझे दूसरे मुल्कों के खाने बहुत पसंद थें, मैंने उन दोस्तों से उनके मुल्कों के खाने पकाने सीखे। इसी दौरान कुछ अनोखी चीज़ें मेरी नज़र से गुज़री। जैसे कि मेरे साथी खाना खाने के लिये हमेशा ज़मीन पर बैठना ही पसंद करते थे। इसके अलावा मुझे यह समझ न आती कि वे मूत्रालय जाते वक़्त भी पानी से भरा बर्तन क्यों साथ लेकर जातें हैं? बहुत बाद में यह समझ में आया कि यह सब तो इस्लामी तरीक़े हैं। और मेरे दोस्तों ने यह तमाम तरीक़े अपनी ज़िन्दगी में उतार लिये थे, जिसकी वजह से वह हमेशा साफ़ सुथरे रहते थे और हर चीज़ में सफ़ाई पसंद करते थे।

मेरा धर्म

मैं और मेरे माता-पिता ईसाई धर्म प्रोटेस्टेन्ट (Protestant) फ़िरक़े से संबंध रखते थे। अपने धर्म के बारे में मैं कम जानता था मगर कुछ मोटी-मोटी बातों को लेकर मैं बहुत उलझन में रहता था, जिसमें सब से श्रेष्ट था ईसा मसीह का अस्तित्व, वह पैगंबर थे या ख़ुदा के बेटे या स्वयं ख़ुदा? मेरे माँ-बाप ने मुझे घर पर कोई धार्मिक शिक्षण नहीं दिया, और बाहर भी मैं कभी किसी से विचार विमर्श न करता था। रही बात चर्च जाने की तो मैं अपने माता- पिता को ख़ुश करने के लिये उनके साथ हर इतवार चर्च जाया करता। चर्च जाकर मुझे एक बात समझ में आई वह यह कि चर्च तो समाजी कार्यक्रमों के लिये हैं, धर्म में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ तो अपना चरित्र और व्यक्तित्व होता है।

विदेश यात्रा

कॉलेज से डिग्री हासिल करने के बाद मेरे सब साथी अपने-अपने मुल्कों को रवाना हो गये। मैने अबू हुसैन को संपर्क किया, उसने मुझे दो हफ्तों के लिये सऊदी अरब आने की दावत दी। मैंने इस सफ़र की तैयारी शुरु कर दी, मुझे पैरिस (Paris) और क़ाहिरा (Cairo) से होते हुए सऊदी अरब पहुँचना था, इस सफ़र के दौरान कई अजीब व ग़रीब घटनायें पेश आयीं, जैसे कि–

मैं न्यूयार्क में एक टैक्सी के ज़रिये ट्रावेल एजंट (Travel Agent) के दफ्तर जा रहा था। ड्राइवर साहब मिस्री थे, उन्होंने जल्दी में अपनी कहानी यूँ बयान की :

''मेरा नाम तारिक़ है। मैं यहाँ उच्च शिक्षण के लिये आया था लेकिन असफल रहा। मैं अपने आप से बहुत शर्मिन्दा हूँ। और इसी वजह से मैंने कई साल से अपने माता-पिता को सम्पर्क भी नहीं किया है। आप क्योंकि क़ाहिरा (Cairo) जा रहें हैं, मेरा यह ख़त मेरे घर पहुँचा दें, आपका बहुत एहसान होगा''।

फिर क़ाहिरा पहुँचते ही मैं एक टैक्सी के ज़रिये तारिक़ के घर पहुँचा और मैंने दरवाज़े पर दस्तक दी, एक बहुत बूढ़ी औरत ने दरवाज़ा खोला, मैं अरबी भाषा नहीं जानता था, मैंने ख़त उनके हवाले किया और 'तारिक़' कहा उसने मुझे अन्दर आने की दावत दी और कॉफ़ी और बिस्किट पेश किए। उनके दूसरे लड़के भी वहाँ मौजूद थे। उस औरत ने अपनी आँखो की तरफ इशारा करते हुए कहा 'तारिक़' यानी 'क्या तुमने तारिक़ को अपनी आँखो से देखा हैं? क्या वो ज़िन्दा है? मैंने अपने हाथ आँखो पर रखकर और सर हिला कर जवाब दिया 'तारिक़'।

इस बातचीत, मेहमान नवाज़ी और घर के वातावरण ने मेरे दिल पर बहुत गहरा असर किया। मैने इतने क़रीब से ऐसी तहज़ीब (संस्कृति) को पहले कभी नहीं देखा था।

सऊदी अरब पहुँचने पर बड़े जोश के साथ मेरा स्वागत किया गया। मैंने ज़्यादा वक्त रियाद (Riyadh) शहर के क़रीब एक गाँव में गुज़ारा। यहाँ मुझे आसमान तले खुले मैदान में सोने का मौक़ा मिला। यहाँ का रहन-सहन बिल्कुल अलग था। अबु हुसैन ने कुछ बकरे ज़िबह किये और पूरे गाँव के लोगों को दावत दी। मुझे ऐसा मान सम्मान अपनी सारी ज़िन्दगी में पहले कभी नही देखने को मिला था। हमारी एक दूसरे से मुहब्बत बढ़ गयी। एक दिन अबू हुसैन ने ऊँटनी का दूध मेरे सामने दूहा और मेरे सामने यह ताज़ा दूध रख दिया, मुझे वह दूध बहुत स्वादिष्ट लगा और मैं ख़ूब मज़े लेकर पी रहा था। तब ही अबू हुसैन के पिता ने मुझसे कहा 'अगर तुम मुसलमान हो जाओ तो मैं तुम्हें 10 ऊँट भेंट में दूँगा' मैने उन्हें झट से जवाब दिया कि

अगर आप ईसाई बन जायें तो मैं आप को 10 ऊँट भेट में दूँगा। ऐसे स्वस्थ्य वातावरण में हमारी नोक-झोक चलती रही और मुझे पता ही नहीं चला कि मेरी छुट्टी के दिन कैसे ख़त्म हो गये। फिर मैं अमरीका आ गया ताकि कोई अच्छी सी नौकरी ढूंढ कर अपने जीवन में स्थिरता पैदा कर सकूँ।

मेरी पहली नौकरी

मैंने कॉलेज मे ग्रेजुएशन के बाद टीचर के पद पर काम करना शुरु कर दिया। मै उन लोगों को अंग्रेज़ी पढ़ाता था जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी न थी। दरअसल ये प्रोजेक्ट अबूदहबी (Abu Dhabi) और टेक्सास यूनिवर्सिटी, अमरीका (Texas University) के आपसी तालमेल से हो रहा था। मैं पहले 6 महीनों अबूदहबी में रहता और वहाँ के निवासियों को अंग्रेज़ी की तालीम देता। फिर उन निवासियों को 6 महीनो के लिये अमरीका लाता और टेक्सास यूनिवर्सिटी में बाक़ी शिक्षण देता। मैं अबूदहबी में बाक़ी टीचरों के साथ एक होटल मे रहता था। मेरा रोज़ का मामूल ये था कि होटल से स्कूल आता और फिर स्कूल से वापस होटल लौट जाता। इसके सिवा तीसरी कोई चीज़ न थी हर दिन पहले दिन जैसा ही होता। इस बेवजह जिन्दगी की वजह से मैं और दूसरे टीचर वहाँ पर घुटन सी महसूस करने लगे। मुझे अब तलाश थी एक मचलती, हँसती-खेलती ज़िन्दगी की। मैंने सोचा कि ज़िन्दगी रंगीन बनाने के लिये यह नौकरी छोड़ना ज़रुरी है और मुझे जिन चीज़ों की ज़रुरत है वे मुझे अमरीका के शहर लास वेगास (Las Vegas) में ही मिलेंगी। तो फिर मैंने बोरिया-बिस्तर बांधा और वहाँ पहुँच गया।

रंगीन दुनिया की तलाश

लास वेगास में जब मुझे कोई नौकरी न मिल सकी तो मैंने अपने पुराने तजुर्बे का सहारा लिया और अखबार में विदेशी बाशिन्दों को अंग्रेज़ी पढ़ाने का विज्ञापन दिया। शुरु मे दो तीन विद्यार्थी फिर विद्यार्थियों की संख्या बहुत बढ़ गयी क्योंकि इस शहर में ऐसे बहुत से लोग थे जिन्हें इस क़िस्म के शिक्षण की बहुत ज़रुरत थी। मैंने एक और दोस्त के साथ मिलकर एक छोटी-सी क्लास रुम का बंदोबस्त कर लिया, और हमारा यह कारोबार दिन दूना रात चौगुना तरक्क़ी करने लगा। पैसे की कोई कमी न थी ज़िन्दगी में कोई अनुशासन भी न था, जिसकी वजह से मै दोबारा जुआ, शराब, लड़कियों

से दोस्ती और दूसरी बुराईयों में डूबता चला गया। मगर जल्दी ही मुझे इन तमाम कुकर्मो से घृणा होने लगी और मेरा मन शांति की तलाश में भटकने लगा। एक बार फिर मुझे अपनी ज़िन्दगी की राह बदलने की ज़रुरत पेश आई और मैने अबू हुसैन को अपनी इच्छा बताई और उनसे यह अनुरोध किया कि वह मुझे सऊदी अरब में कोई अच्छी नौकरी दिलवादें। खुशक़िस्मती से मुझे सऊदी अरब के एक शहर जुबेल (Jubail) में अंग्रेजी भाषा के टीचर के पद पर नौकरी मिल गयी और मैं जल्द ही सऊदी अरब पहुँच गया।

प्रायश्चित की तरफ़ सफ़र

एक दिन मैं फ़िलॉसफ़ी की एक किताब का अध्ययन कर रहा था, उसमें लिखा था कि इन्सान को दिल से तौबा करनी चाहिय तब ही उसके सारे गुनाह माफ किये जायेंगें और उसे शांति प्राप्त होगी। मैंने ज़िन्दगी में कभी प्रायश्चित नहीं किया था और इसके पहले न कभी ऐसा करने के बारे में सोचा था। इस मौके पर मै उन तमाम लोगों के बारे में सोचने लगा जिनको मेरी वजह से किसी न किसी तरह से दुख झेलना पड़ा था। और इसी तरह मैने स्वयं अपने आप पर भी जुल्म किया यानी मैंने बहुत बार अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये दूसरों के हक को मारा था। मेरे दिल ने आवाज़ दी कि मेरे लिये तौबा करना अनिवार्य है तो मैंने उस दिन सच्चे दिल से तौबा की।

काफ़ी समय बाद मुझे यह एहसास हुआ कि अल्लाह भी दिल से की हुई तौबा को ज़रूर कुबूल करता है, मेरी तौबा कुबूल होने का सुबूत यह है कि उस के बाद अल्लाह ने मेरे लिये ऐसे हालात पैदा किये और ऐसे ऐसे लोगों से मुलाकात करवाई जो मुझे सत्य की खोज में बहुत मददगार साबित हुये। ऐसी कुछ घटनायें मैं यहाँ पर बताना चाहूँगा।

गैर मुस्लिम का मस्जिद में प्रवेश

एक बार अबू हुसैन ने मुझे चंद दोस्तों के साथ रहने की दावत दी। नमाज़ का वक्त आया तो हम सब मिलकर मस्जिद चल दिये, मुझे यह बताया गया कि तुम वुज़ू करके हमारे तरह ही नमाज़ अदा कर सकते हो। तो मैंने वैसा ही किया नमाज़ के दौरान मैं आँख के एक कोने से देखता

रहता और उनकी तरह ही जिस्म की हरकतें करता। उस रोज़ मालूम हुआ कि एक गैर मुस्लिम भी मस्जिद में प्रवेश कर सकता है।

इसी तरह एक बार फिर ऐसा ही मामला हुआ, मगर इस बार मुझे अबू हुसैन के दोस्तों ने कहा कि नमाज़ में अपने गुनाहों को याद करो और खूब तौबा करो, फिर मार्गदर्शन के लिये दुआ माँगो। मैंने ठीक वैसा ही किया जैसा बताया गया था। उस वक़्त मुझे बड़ी शान्ति मिली। ऐसी शान्ति मुझे इससे पहले कभी नहीं मिली थी। इसके बाद मैं हमेशा ऐसे अवसर की तलाश में रहता कि उनके साथ नमाज़ पढ़ सकूँ। और सुख व शान्ति प्राप्त कर सकूँ।

मैं इस्लाम की मिठास तो चख ही चुका था मगर अभी भी मेरा दिल इस्लाम में प्रवेश करने के लिये तैयार न था। उसके बहुत सारे कारण थे। जैसे कि मुझे डर था कि मुसलमान बनने के बाद मैं पुराने दोस्तों और अपने कुनबे से कट जाऊँगा, इसके अलावा शराब, जुआ और बाक़ी ख़राब आदतों को छोड़ना भी ज़रूरी हो जायेगा। इस्लाम में प्रवेश करने के लिये मुझे अपने आप में बहुत बड़ा बदलाव लाना ज़रूरी था, जिसके लिये मैं अभी तैयार न था।

इसी शहर में मेरा एक अमरीकी मुस्लिम दोस्त जो कि पेशे से इंजीनियर था काम कर रहा था। उसका नाम अली बशीर था। एक दिन मैं अबू हुसैन के साथ जुमा की नमाज़ पढ़ने के लिये मस्जिद गया वहाँ अली बशीर से मुलाक़ात हो गयी। मैंने अली बशीर से कहा कि ''मैं इस्लाम में प्रवेश करने के बहुत क़रीब आ चुका हूँ, समझ लो किसी के एक मामूली से धक्के की ज़रूरत है और मैं इस्लाम में दाख़िल हो जाऊँगा।'' अली बशीर ने इस मक़सद के लिये मुझे एक वीडियो दी, ताकि मुझे उससे कुछ फ़ायदा हो सके।

एक महत्वपूर्ण पिकनिक

जुबेल (Jubail) के मुसलमान नागरिकों ने एक पिकनिक का आयोजन किया, उसमें हम 6 ग़ैर मुस्लिम भी आमंत्रित थें। हमने दिन भर विभिन्न खेल खेले, फिर मिल जुलकर खाना खाया और आख़िर में एक छोटा-सा भाषण हुआ। मैं वह सुनकर दंग रह गया कि मुसलमान सब पैग़म्बरों को और आसमानी किताबों को मानते हैं। हमें कुछ पत्रिकाएँ भी दी गईं, जिसमें विभिन्न धर्मों की संक्षेप में मालूमात दर्ज थी। उनमें एक पत्रिका बहुत ही

दिलचस्प थी, जिसमें एक मुसलमान और ईसाई के दरम्यान बहस का वर्णन था। इस पत्रिका के पढ़ने के बाद मेरा एक ख़ुदा पर विश्वास और बढ़ गया। मगर मैं अब भी समझ नही पा रहा था कि आख़िर उस ख़ुदा की इबादत किस ढंग से करुँ।

दिलचस्प वीडिया

अबू हुसैन के घर अक्सर दावतों का प्रोग्राम रहता। इस बार बहुत बड़ा ग्रुप था। हमेशा की तरह हमने खाना खाया और खाने के बाद सब लोग बातों मे उलझ गऐ। क्योंकि बातचीत अरबी भाषा में चल रही थी मुझे थोडी बोरियत सी होने लगी तभी मेरी नज़र उस कमरे मे रखे एक टी. वी. और वी. सी. आर पर पड़ी। मैं अपनी कार से अली बशीर की दी हुई वीडियाकैसेंट ले आया और उसे देखना शुरु कर दिया। वीडियो कैसेट अंग्रेजी भाषा में थी, मेहमानों ने मेरी तरफ़ कोई ध्यान न दिया और मैं विडियो देखने में पूरी तरह मशग़ूल हो गया।

इस वीडिया का विषय था ''तुम्हारी ज़िन्दगी का क्या मक़सद है, तुम इन्सान के बारे में क्या जानते हो?''

यह विषय देखकर मैं भी सोचने पर मजबूर हो गया कि आख़िर मेरी ज़िन्दगी का क्या मक़्सद है? मगर मुझे ख़ुद से कोई संतोषजनक उत्तर न मिल सका।

इस वीडियो से मुझे तीन महत्वपूर्ण बातें मालूम हुई :—

पहली तो यह कि ज़िन्दगी का मक़्सद सिर्फ़ इस्लाम होना चाहिये यानी एक ख़ुदा की आज्ञा का पालन करना। दूसरा यह कि क़ुरआन पाक में 'इस्लाम' शब्द तो मिल जायेगा, लेकिन बाक़ी धर्मो का नाम (ईसाई/यहूदी) उनकी किताबों (बाईबल/तोराह) में मौजूद नहीं। और तीसरा यह कि अगर कोई ईसाई है तो उसे मुसलमान बनने के लिये ज़्यादा मेहनत की ज़रुरत नहीं। उदाहरण के तौर पर अगर तुम ईसाई हो और अब इस्लाम क़ुबूल करना चाहते हो तो यह ऐसा ही है जैसे अगर तुम्हारे पास एक क़ीमती सूट हो और वह तुम्हारे जिस्म पर ठीक न बैठता हो तो उसे यूँ ही फैंक नहीं दिया करते बल्कि उसमें कुछ तबदीलियाँ करके इस्तेमाल के क़ाबिल बना लेते

हैं। दूसरे शब्दों मे यूँ समझना चाहिये कि तुम्हे बचपन के सब बुनियादी धार्मिक उसूलों को एक दम ख़त्म करने की ज़रुरत नहीं है बल्कि उनमे ज़रुरी तबदीलियाँ करने के बाद इस्लामी ज़िन्दगी में भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

इस वीडियो को देखने के बाद मेरी आँखों से पर्दा हट गया और मुझे सच्चाई के दर्शन हो गये। और मेरा दिल अब इस्लाम क़ुबूल करने के लिये पूरी तरह तैयार हो गया।

इस्लाम क़ुबूल करने में बेक़रारी

अब मेरा दिल इस्लाम से दूर रहने को तैयार न था। मैंने अबू हुसैन को धीरे से आवाज़ दी और अपने पास आने के लिये कहा और फिर उन्हें अपने साथ कमरे से बाहर ले आया। मैंने अबू हुसैन से कहा कि मुझे अभी और इसी वक्त मुसलमान बनना है। अबू हुसैन ने मुझे समझाते हुए कहा कि मैं और छान बीन करने के बाद ये फ़ैसला करुँ। मैंने अबू हुसैन को यक़ीन दिलाया की अब और छान बीन की कोई ज़रुरत नहीं है और मेरा फ़ैसला बिल्कुल अटल है।

अबू हुसैन मुझे दूसरे कमरे में ले गये और वहाँ पर उन्होंने मुझे कलमा शहादत पढ़कर सुनाया और फिर उसका मतलब भी समझाया, फिर मुझे ये कलमा दोहराने के लिए कहा। इसके बाद अबू हुसैन ने मुझे कमरे से बाहर चलने के लिये कहा और यह ख़ुशख़बरी बाक़ी दोस्तों को सुनाई। सबने एक-एक करके मुझे गले से लगाया और मुबारकबाद दी। मुझे यह बताया गया कि मैं घर जाकर स्नान करूँ और आज से ही नामज़ पाबंदी से पढ़ना शुरु कर दूँ।

मुस्लिम नाम

मैं दो दिन बाद जामा मस्जिद में जुमा की नमाज़ के लिए गया। अबू हुसैन ने ये राय दी कि यहाँ सब नमाज़ियों के सामने दोबारा कलिमा शहादत पढ़ूँ और सबके सामने अपने इस्लाम क़ुबूलियत की गवाही दूँ। मुझे यह बात पसंद आई। अबू हुसैन साहब ने मुझसे पूछा तुम कौन सा मुस्लिम नाम पसंद करते हो, ताकि इमाम साहब इस मुस्लिम नाम से तुम्हारा परिचय करवायें। मैंने बताया कि फ़िलहाल मुझे कोई नाम याद नहीं आ रहा है, इमाम साहब मेरा परिचय मेरे अमरीकी नाम से करवादें तो बेहतर है। इसके बाद

अबू हुसैन साहब मेरे क़रीब बैठे क़ुरआन पाक की तिलावत में मशग़ूल हो गये। अचानक उन्होंने अपनी कोहिनी से मेरे जिस्म को छुआ और कहने लगे क्या तुझे 'यहया' नाम पसंद है? मैंने पूछा 'यहया' का क्या मतलब हैं? उनहों ने कहा मैं 'John the Baptist' यानी यहया (अ. स.)। मैंने कहा मैं 'John the Baptist' को अपने पुराने मज़हब से भी पहचानता हूँ। अबू हुसैन ने बताया कि उसका एक और मतलब 'नई ज़िन्दगी' भी है। मैंने कहा कि अब से मेरी नई ज़िन्दगी की शुरुआत हो रही है, इसलिये भी मेरे लिये यह नाम मुनासिब है। इस तरह मेरे परिचय होने से पहले ही मैंने यहया नाम पसंद कर लिया और इमाम साहब ने जुमा की नमाज़ के बाद इसी नाम से मेरा परिचय करवाया।

क़रीब 400 लोगों के सामने कलिमा शहादत पढ़ने के बाद सब लोगों ने ख़ुशी-ख़ुशी बड़े प्यार से मुझे गले लगाया। इतना प्यार देखकर मेरा हौसला और बढ़ गया।

इस्लमी तालीम

क्योंकि मैं एक इस्लामी मुल्क में रह रहा था, मेरे लिए इस्लाम की तालीम हासिल करना आसान हो गया था। मुझे ऐसे जगहों का पता मिल गया जहाँ पर इस्लामी तालीम अंग्रेज़ी में दी जाती हैं। तो मैंने हफ़्ते में एक दिन इस शिक्षण के लिए फ़िक्स कर लिया। यह सिलसिला चार साल तक चलता रहा और मैंने क़ुरआन की तिलावत से लेकर इस्लामी क़ानून के ज्ञान तक सब सीख लिया। मुझे क़ुरआन अरबी में पढ़ना और समझना भी आगया। क़ुरआन पाक की ज़ुबान अरबी है, मेरे .ख़्याल में हर मुसलमान को अरबी सीखना और समझना बहुत ज़रुरी है। कुछ साल बाद जब मेरी बदली मदीना मुनव्वरह (Madina Munawarah) में हुई तो यहाँ के रुहानी माहौल ने मेरे दिल को और भी पवित्र कर दिया '*अल्हम्दुलिल्लाह*'।

विवाह

इस्लाम के शिक्षण के मुताबिक़ शादी करना ज़रुरी है। मैंने सोचा कि मैं अपने बच्चों को सबसे क़ीमती तोहफ़ा यह दूँगा कि अरबी भाषा उनकी मातृभाषा होगी। तो मैंने एक अरबी नस्ल की लड़की से शादी करने का फ़ैसला कर लिया। और जल्द ही मुझे शाम (Syria) की रहने वाली एक

लड़की मिल गई और अल्लाह के करम से अब हमारे बच्चों को अरबी ज़ुबान पर ख़ूब महारत हासिल है।

छुट्टियों के दौरान मैं अमरीका गया, मेरे दोस्त मेरा मज़ाक उड़ाने लगे और वह बार-बार कहते कि 'तुम उस औरत से कैसे शादी कर सकते हो जिसे तुम व्यक्तिगत रूप से पूरी तरह से नहीं जानते? मैंने उन्हें जवाब दिया कि इस्लाम ने पति-पत्नी के अधिकारों को बहुत साफ़ तरीक़े से पेश कर दिया है। और यह तो अल्लाह का क़ानून है, इसलिये जो इस पर चलेगा सफलता पायेगा। अगर पति और पत्नी इस क़ानून पर अमल करें तो उनके संबंध में कभी भी कोई कड़वाहट नहीं आयेगी और दोनों एक शान्तिपूर्ण वातावरण में ज़िन्दगी बसर कर सकेंगे। वह मेरी बात सुनकर ज़ोर- ज़ोर से हँसने लगे, मैं भी अपने अमरीकी दोस्तों पर ज़ोर-ज़ोर से हँसा और फिर ये कहा, ''मुझे मालूम है कि तुम शादी से पहले कई लड़कियों से दोस्ती करते हो, तुम्हारा यह अमल ऐसा है जैसा तुम कार ख़रीदने से पहले उसे टेस्ट ड्राईव (Test Drive) करते हो'' यह सुनकर उनकी हँसी बंद हो गयी और उनकी गर्दन शर्म से झुक गयी।

माता-पिता की प्रतिक्रिया

मेरे इस्लाम क़ुबूल करने की ख़बर सुनकर मेरे माता-पिता को अच्छा नहीं लगा। लेकिन उन्होंने अपना यह दुःख ज़ाहिर न होने दिया और कहने लगे कि अगर तुम इससे ख़ुश हो तो हम भी तुम्हारी ख़ुशी में शामिल हैं।

एक बार मेरी बहन ने अमरीका से सऊदी अरब फ़ोन किया और यह ख़बर दी कि मेरी माँ बहुत बीमार है तो यह ख़बर सुनकर मैं और मेरी बीवी अमरीका पहुँचे। मैंने और मेरी बावी ने उनकी बहुत ख़िदमत की, मेरी माँ मेरी बीवी की पवित्र सेवा देखकर बहुत प्रभावित हुई।

एक दिन मैंने अपनी माँ से पूछा ''क्या आपको एक ख़ुदा पर यक़ीन है?'' वह कहने लगीं ''हाँ।'' तो मैंने उनसे कहा कि आप मेरे साथ यही शब्द अरबी में दोहरायें और मैने उन्हें कलिमा शहादत का पहला भाग पढ़ाया, मेरी माँ ने उसे मेरे साथ तीन बार दोहराया। फिर यही कलिमा मैंने अंग्रेज़ी में दोहराया यानी ''अल्लाह एक है और उसके सिवा कोई पूजा के क़ाबिल नहीं।''

फिर एक दिन मैंने माँ से पूछा कि ''क्या आप का खुदा के पैग़मबरों यानी आदम (अ. स.), इब्राहिम (अ. स.), मूसा (अ. स.), ईसा (अ. स.) और मुहम्मद (स.अ.व.) पर ईमान है?'' वह कहने लगी ''हाँ।'' तो मैंने उनसे अनुरोध किया कि वह मेरे साथ ये शब्द अरबी में दोहरायें कि मुहम्मद (स.अ.व.) अल्लाह के रसूल हैं (यह कलिमा शहादत का दुसरा भाग है)। फिर यही कलिमा मैंने अंग्रेज़ी में दोहराया, मुझे इस बात की ख़ुशी है कि उन्होंने यह भी दो बार दोहराया।

मेरी माँ इस्लाम क़ुबूल करने के पाँच दिन बाद इस दुनिया से कूच कर गई। मैं अल्लाह का बहुत शुक्रिया अदा करता हूँ कि उसने मेरी माँ को उनके आख़िरी दिनों में इस्लाम की इतनी बड़ी दौलत से मालामाल कर दिया। मेरी माँ ज़िन्दगी में दिल खोलकर दान और ख़ैरात किया करती थी। दूसरों की ज़रुरतों का भी ख़्याल रखती थी। इसके अलावा अपने रिशतेदारों और पड़ोसियों को भी तोहफ़े पेश किया करती। मुझे लगता है कि उनकी ये सेवाएँ और अच्छे कामों की वजह से अल्लाह ने उन्हे इस्लाम की दौलत से नवाज़ा है।

इस वक़्त प्रोफ़ेसर यहया साहब सऊदी अरब की एक मशहूर युनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी सिखातें हैं। उन्होंने विभिन्न धर्मों के बारे में एक पत्रिका छापी है, जिसका नाम हैं :—

(The Best Way to Live and Die)

यानी 'जीने और मरने का बेहतरीन तरीक़ा'।

वामी, (World Assembly of Muslim Youth - WAMY) सऊदी अरब में ये पत्रिका मिलती है उनकी ख़्वाहिश है कि ऐसी ही किताबें और लिखें ताकि लोग उनके विचार और अनुभव से फ़ायदा उठा सकें।

यहया साहब स्थानीय इस्लामिक सेन्टर में भी काम करते हैं ताकि नये मुसलमानों के ईमान को मज़बूत कर सकें। दुआ है कि अल्लाह उनकी ख़िदमतों को क़ुबूल फ़रमाऐ, आमीन।

प्रोफ़ेसर यहया साहब को ग़ैर-मुस्लिमों से अंग्रेज़ी भाषा में बात चीत करना बहुत अच्छा लगता हे, उनका ई-मेल पता है :—

dflood58_2000@yahoo.com

जो पाउल ईचान

(Joe Paul Echon)

(एक फ़िलिपीनी कम्पयूटर इंजीनियर)

एक ज़माने से विभिन्न देशों के लोग समय-समय पर सऊदी अरब आ रहे हैं ताकि यहाँ काम करके कुछ धन जमा कर लें और अपने आर्थिक जीवन को ख़ुशहाल बना सकें। इस प्रकार यह देश न केवल मुसलमानों के लिए बल्कि दूसरी क़ौमों के लिए भी आकर्षक है। ''सालेह ईचान''(Saleh Echon) साहब भी इसी कारण फ़िलपाइन (Phillipines) से सऊदी अरब आए। इनका पैदाइशी नाम ''जो पाउल ईचान'' (Jo Paul Echon) था। सऊदी अरब में रिहाईश के समय उन्हें कई तहज़ीबी और समाजी मामलों से दो चार होना पड़ा। जिसके लिये उन्हें बेहद मेहनत करनी पड़ी। उनकी लगन, मेहनत और चाहत से अजीबो ग़रीब नतीजे बरामद हुए, जो कि उनके स्वप्नों और विचारों में भी नहीं आ सकते थे। उनकी अद्‌भुत कहानी हर इन्सान के लिये एक रौशनी की राह है, ''ईचान'' साहब ने अपनी दिलचस्प कहानी यूं बयान की है।

शुरू की धार्मिक सरगरमियाँ

मेरी फ़ैमिली रोमन कैथोलिक थी और नियमित रूप से चर्च जाती थी, मैं बचपन ही से धार्मिक कामों में ख़ुशी-ख़ुशी भाग लेता था। जब मैं प्राइमरी स्कूल का छात्र था तो मैं चन्द अन्य लड़कों की मदद से चर्च की साफ़-सफ़ाई करने में अभिमान का अनुभव करता था और चर्च की सेवा के समय में अपने धर्मगुरू के सहायक की हैसियत से उनके साथ खड़ा रहता था। जब मैं हाई स्कूल पहुँचा तो चर्च के गाने बजाने वाले ग्रुप में शामिल हो गया। मैं कभी तो गिटार (gitar) बजाता और कभी प्यानो (piano) और साथ ही तरह-तरह की लै से गाता। हमारे यहाँ नौजवानों का एक ऐसा ग्रुप था जो

कि धार्मिक कामों में हर प्रकार से चर्च की मदद करता। और यह भी सोच विचार करता कि किस-किस तरीक़े से ''मेरी'' (Mary) से प्यार बढ़ाया जाए और उसकी पूरी आस्था के साथ पूजा की जाए। इस ग्रुप का नाम ''लीजन्ड ऑफ मेरी'' (Legend of Mary) था। मैं इस ग्रुप में भी आगे आगे था। चर्च में ''मेरी'' के कई पुतले थे, जैसे,

वरजिन मेरी (Virgin Mary)
मेरी मैगडालिन (Mary Magdalene)
इमाकुलेट कन्सेप्शन (Immaculate Conception)

हमारे ग्रुप के लिये भी ''मेरी'' का एक विशेष पुतला था। जिसकी हम बड़ी श्रद्धा से पूजा करते थे।

हमारे चर्च में पूजा का तरीक़ा कुछ इस तरह था कि हमारे धर्म-गुरू साहब 'बाइबल' का पाठ करते और हम सब आत्मविभोर होकर उसे सुनते। इस दौरान हमें ख़ुद कभी भी बाइबल पढ़ने और उस पर ध्यानपूर्वक विचार करने का अवसर न मिला। सब लोग केवल सुनने पर ही संतोष करते थे।

जीवन की पहली हलचल

मेरी कॉलेज की ज़िन्दगी के दौरान एक अजीब घटना घटी, मेरे एक मित्र ने मुझे निमंत्रण दिया कि मैं उसके चर्च में पूजा अर्चना की विधि को देखूं। चर्च प्रोटेस्टेन्ट (Protestant) वर्ग से सम्बंध रखता था। मैं यह देखकर हैरान हुआ कि यहाँ न केवल उनके धर्मगुरू के पास बाइबल है, बल्कि हर व्यक्ति अपने अपने हाथों में बाइबल उठाये हुए है, और जो कुछ धर्मगुरूजी पढ़ते हैं, बाक़ी लोग भी उसी पन्ने को पढ़ने और समझने की कोशिश करते हैं। मुझे इससे बढ़कर यह आश्चर्य हुआ कि बाइबल में बार-बार इस बात का बयान है कि किसी पुतले की भी पूजा करना जायज़ नहीं है। इस बात ने मेरी आँखे खोल दीं और मुझे पहली बार सच्चाई का पता चला। जिसने मेरे जीवन में एक हलचल सी पैदा कर दी। मैं रोमन कैथोलिक चर्च को छोड़कर प्रोटेस्टेन्ट चर्च में शामिल हो गया। शायद यह मेरा नया जन्म था। इसलिये यह वर्ग 'बार्न अगेन' (Born Again) कहलाता है, मेरे जीवन मे इस हलचल का मतलब यह था कि मैं बाइबल की शिक्षा के अनुसार किसी भी पुतले की पूजा न करूँ और बाइबल को ख़ुद पढ़ने और समझने की कोशिश करूँ। मैं

अपने परिवार में पहला प्रोटेस्टेन्ट (Protestant) था, मेरे घर के तमाम लोगों ने भी इस चर्च की तालीम से फ़ायदा उठाना शुरू कर दिया और सबके सब नये चर्च में शामिल हो गये। हम सब इस चर्च के काम-धाम में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते, ख़ास तौर से मैं शिक्षा और दीक्षा के इस विभाग से जुड़ गया। इस तरह से मुझे बाइबल पर पूरी पकड़ हासिल हो गई। यहाँ तक कि मैं भी एक धर्मगुरू या पादरी की तरह काम कर सकता था। इसी वजह से चर्च के सारे सदस्य मेरा आदर करते थे।

मेरे देश में इस्लाम की व्याख्या

मैं इस्लाम के बारे में बिल्कुल कोरा था, मेरा ख़्याल था कि मुसलमान एक धर्म का नाम है। मुझे प्राइमरी से लेकर हाई स्कूल तक किसी मुसलमान बच्चे से मिलने का अवसर नहीं मिला था। मेरे ख़्याल में अगर कोई मुसलमान बच्चा मेरी क्लास मे था तो वह इस्लामी शिक्षा से बिल्कुल दूर था। इसलिये व्यक्तिगत तौर पर उसे पहचाना नहीं जा सकता था। मुझे याद है कि कॉलेज में कुछ उस्ताद मुसलमान थे, लेकिन वह भी सिर्फ नाम के ही मुसलमान थे। उनके और दूसरे लोगों के आचार-विचार में कोई अन्तर नहीं था।

मुझे मानसिक तौर पर मुसलमानों से नफ़रत थी क्योंकि हमारे देश के समाचार पत्र और टी.वी. खुल्लमखुल्ला मुसलमानों की अवहेलना करते थे। अगर एक मुसलमान कोई जुर्म करता तो तमाम मुसलमानों को वैसा ही मुजरिम क़रार दिया जाता। अक्सर बल्कि बार-बार यह एलान किया जाता कि मुसलमान एक आतंकवादी गिरोह है। हमें यह नसीहत की जाती कि एक मुसलमान के सामने से न गुज़रो क्योंकि वह तुम्हें बेदर्दी से क़त्ल कर देगा और यह कि मुसलमान से लेन-देन मत करो क्योंकि वह बुनियादी तौर पर बहुत बुरे लोग हैं।

फिर भी मुझे यह बात स्वीकार है कि हमारे धार्मिक गुरू कभी भी मुसलमानों को बुरा भला न कहते क्योंकि वह ईसाईयों के आपसी मतभेद और ऊँच-नीच की खींचतान में ही व्यस्त रहते। इस तरह उन्हें दूसरी बातों पर ध्यान देने के लिये समय ही न मिलता था।

नौकरी

मैंने कॉलेज से कम्प्यूटर साईन्स में बी.एस.सी.टी. डिगरी हासिल कर ली और इन्टेल फ़िलीपाइन्स (Intel Phillipines) फ़र्म में नौकरी शुरू कर दी। कुछ महीनों के बाद मैंने एक दूसरी कम्पनी में तबादला करा लिया क्योंकि इसमें मेरे लिये काफी तरक्क़ी के अवसर मौजूद थे और मेरे कॉलेज के कई साथी भी यहाँ काम करते थे। मैंने पाँच साल में कई नई चीज़ें सीख लीं और कुछ दोस्तों की मदद से एक प्राइवेट कम्पनी स्थापित कर ली, लेकिन यह कम्पनी .ज्यादा देर न चल सकी क्योंकि कुछ साथी अपनी ज़िम्मेदारी अच्छी तरह अन्जाम नहीं देते थे, जब मैंने यह अवस्था देखी तो सबसे पहले मैंने ही इस गठजोड़ से अलग हो जाना पसंद किया और किसी दूसरे काम की तलाश शुरु कर दी।

बाहरी मुल्क में नोकरी की तलाश

मेरे एक दोस्त ने यह राय दी कि हमें चन्द साल सऊदी अरब में ही नौकरी करनी चाहिये। इस तरह हम मुनासिब रक़म जमा कर लेंगे और फिर अपने मुल्क वापस आकर एक अच्छा कारोबार शुरू कर सकेंगे। इस तरह हम दोनों ने एक एजेन्सी से संपर्क स्थापित किया। वह पहले से ही कम्प्युटर इन्जीनियर की तलाश में थे जो एक सऊदी बैंक को दरकार थे। इत्तेफ़ाक से उस बैंक के मैनेजर साहब भी मनीला (Manila) में मौजूद थे, इसलिये जल्द ही हमारा इन्टरव्यू हो गया, और हमें बैंक मैनेजर ने काम की पेशकश कर दी लेकिन तनख़ाह कम होने की वजह से हमने इस पेशकाश को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। एजेन्सी भी मुझे बार-बार फ़ोन करती रही लेकिन मैंने एक न सुनी परन्तु मेरे दोस्त ने मुझे मजबूर किया कि मैं उसका साथ दूँ। इसलिए आख़िरकार सिर्फ़ दोस्त का साथ देने के लिये मैंने भी उस नौकरी की पेशकश को स्वीकार कर लिया और हम दोनों सऊदी अरब पहुंच गये।

सऊदी अरब में शुरुआती तजुर्बे

मैं न सिर्फ अरबी भाषा में कोरा था बल्कि मुझे उससे नफ़रत भी थी, मैं समझता था कि इस भाषा की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कोई अहमियत नहीं होगी इसलिये इसे सीखना और समझना अनावश्यक है। मैं और मेरे साथी सऊदी अरब के पूर्वी इलाक़े में एक बैंक के तमाम कम्प्यूटर और दूसरे ऐसे ही यन्त्रों

की दुरुस्ती करते थे। मेरे साथ काम करने वाले सबके सब इन्जीनियर अंग्रेजी भाषा अच्छी तरह समझ सकते थे इसलिये भी हमें अरबी बोलने और सीखने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। इस पर मामला यह कि हमारे अरबी एडीटर को अंग्रेजी पर भी काफ़ी दक्षता हासिल थी। क्योंकि उन्होंने बाहरी देशों की शिक्षा हासिल की थी। मैं और मेरे फिलिपिनी साथी मिलकर एक किराऐ के मकान में रहते थे। यहाँ की समाजी ज़िन्दगी बिल्कुल अलग थी। कई तरह की पाबन्दियाँ थीं जिसके हम आदी न थे। इसलिये हम काफ़ी बेचैनी और मानसिक कशमकश में उलझ गऐ थे। चूंकि हमारा मक़सद धन जमा करना था इसलिये इस घुटन के बावजूद भी हम अपना समय गुजार रहे थे।

काले बादलों में सुनहरी किरण

एक दिन मैंने दम्माम (Dammam) शहर में एक टैक्सी किराऐ पर ली और इससे पन्द्रह रियाल किराया तय किया। ड्राइवर साहब काफ़ी साफ़-सुथरे लिबास पहने हुए थे, देखने से काफ़ी सज्जन आदमी लगते थे। उन्होंने यह भाँप कर कि में अकेला अजनबी हूँ, सफ़र के दौरान मुझसे ज़्यादा किराऐ के लिये आग्रह किया। यहाँ तक कि सफ़र के ख़त्म होने पर आपसी तौर पर तय किए हुए किराये से ज़्यादा के लिए झगड़ा किया। मुझे बहुत ग़ुस्सा आया। मैंने टैक्सी से बाहर छलांग लगाई और उससे कहा कि क्या तुम पाँच वक़्त नमाज़ नहीं पढ़ते? यह सुनते ही उसने कहा कि मुझे सिर्फ पन्द्रह रियाल ही दो। मैंने उसे पन्द्रह रियाल ही दिये और वह ख़ामोशी से रवाना हो गया। जब मैंने इस घटना पर सोच विचार किया तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि यह ड्राइवर वास्तव में दिल का अच्छा आदमी था, यह मेरे लिए पहला अच्छा तजुर्बा था, इसके बाद से मैंने समझ लिया कि यहाँ के वासी बुनियादी तौर पर बहुत अच्छे लोग हैं।

मुझे इसी तरह की एक और अजीब घटना से दो-चार होना पड़ा, मैं और मेरे देश के साथी हमेशा अपने मुल्क का खाना पकाते और उसी खाने पर सन्तोष करते थे। मुझे सऊदी खाना खाने की इच्छा न हुई। एक दिन हमारे इन्चार्ज ने हमें एक प्रोजेक्ट के लिए एक ग्रामीण इलाक़े में भेजा। दिन भर के काम के बाद ख़ूब भूक लगी, वहां फिलीपिनी खाना उपलब्ध होना

संभव न था। इसलिए मजबूरी की वजह से मैंने पहली बार कबसा (Kabsa) खाया। और उसे काफ़ी स्वादिष्ट पाया। इस घटना के बाद मैं हर उस जगह की तलाश मे रहता जहाँ कबसा मिलता हो। इस तरह मेरी तबीयत सऊदी खाने की तरफ खिंचने लगी और मैंने यहाँ की समाजी ज़िन्दगी से लाभ उठाना शुरू कर दिया।

एक अजीब-व-ग़रीब बातचीत

अब्दुल्लाह अल-उमरी साहब इस बैंक में मेरे इन्चार्ज थे। अरबी उनकी मातृभाषा थी, लेकिन अंग्रेज़ी पर भी उनको कन्ट्रोल हासिल था, क्योंकि उन्होंने बाहरी मुल्कों में शिक्षा हासिल की थी। वह हमसे अंग्रेज़ी में ही बातचीत करते और हमसे ख़ूब घुलमिल कर रहते, वह किसी हद तक बातूनी भी थे। एक दिन वह मुझे एक कहानी सुनाने लगे इस कहानी के दौरान उनके मुँह से शब्द जीसस (Jesus) निकला। मैंने उन्हें तुरन्त टोक दिया। और जोश से कहा। ''जीसस तो मेरा है, आप कौन होते हैं जिसस की बात करने वाले।''

मैंने पहली बार एक मुस्लिम के मुँह से जिसस का नाम सुना था। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैं दो साल से सऊदी अरब में रह रहा था लेकिन किसी मुसलमान ने मुझसे धर्म के बारे में आज तक बात न की थी। मुसलमानों के बारे में मेरी सोच भी निराली थी। मैं समझता था कि मुसलमान सूरज की पूजा करते हैं क्योंकि वह सूर्य निकलने व डूबने और आकाश पर बुलन्द होने के समय पर पूजा करते हैं, शायद सूर्य उनका देवता है।

अब्दुल्लाह साहब मेरी बात सुनकर कुछ क्षण के लिए तो ख़ामोश रहे, फिर उन्होंने तरतीब से सभी पैग़म्बरों के नामों का ज़िक्र किया। जैसे नूह-अलैहिस्सलाम, इब्राहीम-अलैहिस्सलाम, मूसा-अलैहिस्सलाम और ईसा अलैहिस्सलाम इत्यादि। उन्होंने कहा कि यह सब हमारे भी पैग़म्बर हैं। चूंकि इन पैग़म्बरों के नाम बाइबल में मिलते हैं इसलिये मुझे इनकी ख़ूब जानकारी थी। अब्दुल्लाह साहब के इस बयान के बाद मुझे यह ख़्याल पैदा हुआ कि यहूदियों, ईसाइयों और मुसलामनों में कुछ न कुछ सम्बन्ध आवश्यक है।

इस्लाम के बारे में छानबीन

अब मैंने इस्लाम के बारे में छानबीन आरम्भ कर दी, ताकि यह जान सकूँ कि आखिर अब्दुल्लाह साहब का मज़हब कैसा है? मैं दमाम मैं जरीर बुक स्टोर में गया ताकि इस्लाम के बारे में किताबें ख़रीद सकूँ, जब मैंने किताबों की अलमारी पर नज़र दौड़ाई तो उस स्टोर में विभिन धर्मों के मवाज़ने से मुताल्लिक़ कई किताबें मौजूद थीं, एक किताब का शीर्षक मुझे बहुत अजीब लगाः

Jesus, not God, Son of Mary

मैंने ये किताब और एसी ही चार और किताबें खरीद लीं, और भागा भागा घर आया ताकि इन्हें पढ़ूं। इन कितबों में बाइबल से बहुत इकतसिबात (Quotations) थे, मैं ने जल्दी से अपनी बाइबल निकाली ताकि एक एक करके तसदीक कर सकूं, जब मैं ने किताब में दी हुई पहली कोटेशन को बाइबल में देखा तो वह बिल्कुल वैसी ही थी, मुझे हैरत हुई, लेकिन मैं ने सोचा कि मुझे झांसा देने के लिये एक फ़िक़रा हू बहू लिख दिया गया होगा, जल्दी से दूसरी कोटेशन का मवाज़ना किया तो वह भी ठीक निकली, मैं ने यह ख़याल किया कि यह चंद फ़िक़रे ठीक लिख कर आगे के पन्नों में कोई न कोई चक्कर बाज़ी ज़रुर होगी, चूंकि मैं बाइबल पर पूरा हावी था, इस लिये मैं ने किताब की हर एक कोटेशन को आसानी से चैक कर लिया और मेरी उम्मीद के खिलाफ़ सब कोटेशन ठीक निकले, इस से मेरी उत्सुक्ता और बढ़ गई।

इस दौरान मैं ने अब्दुल्लाह साहब से पूछा कि इस शहर में इस्लाम के प्रचार का कोई केन्द्र है? उन्हों ने एक जगह बताइ जो मेरे घर के क़रीब थी। मेरे मुल्क के ज़्यादातर बाशिन्दे (निवासी) क़रीब के शहर अल-ख़ोबर (Al-Khobar) में रहते हैं। जब मैं अपने मित्रों से इस शहर में मिलने गया तो देखा कि अल-ख़ोबर में भी एक इस्लाम के प्रचार का केन्द्र है। मैं इस केन्द्र में दाख़िल हुआ तो वहाँ भी वैसी ही कई किताबें देखने को मिलीं। चूंकि मैं पाँचों किताबों का अध्ययन कर चुका था इसलिये मैंने इस प्रचार केन्द्र से चन्द किताबें और चुन लीं। मिलने पर पूछा कि इनकी क़ीमत क्या है? मुझे बताया गया कि यह मुफ़्त हैं। मैं मुफ़्त चीज़े लेने का आदी न था, मैंने क़ीमत अदा करनी चाही तो मुझे दुबारा यह जवाब मिला कि यह सब किताबे

बिल्कुल मुफ़्त हैं। आप बिना झिझक ले जा सकते हैं। मैंने साफ़ कह दिया कि क़ीमत अदा किए बग़ैर किताबें नहीं लूँगा। मेरे बार-बार कहने पर उन्होंने मुझसे थोड़ी-सी क़ीमत वसूल कर ली ताकि मैं किताबें ले जा सकूँ। यह सारा दृश्य एक सऊदी निवासी (बाशिन्दा) देख रहा था। वह साहब मुझे एक तरफ़ ले गए और मुझसे थोड़ी-सी बातचीत की। इसके बाद मैं नई किताबें बग़ल में दबाए अपनी कार तक पहुँचा और आत्मविभोर होकर अपने घर आ गया ताकि इन किताबों का भी जायज़ा ले सकूँ। मेरे मकान में रहने वाले हमवतन साथी मेरे इस चकित मन और किताबों के ढेर को ख़ामोशी से देखते रहे थे।

एक दिलचस्प वीडिया

मैंने इन नई किताबों का भी अध्ययन किया। और उनमें हर कोटेशन को अपनी बाइबल के अनुसार पाया लेकिन इस सब कुछ के बावजूद मुझे मुसलमान बनने में काफ़ी हिचकिचाहट थी। मैं इस्लाम के प्रचार केन्द्र में दोबारा गया। एक साहब ने मेरी चकित भावना के राज़ को पहचान लिया। उन्होंने मुझे एक विडियो देखने के लिए आमंत्रित किया। यह वीडिया अहमद दीदात साहब और एक ईसाई पादरी के दरम्यिान बातचीत (मुनाज़रे) की थी। मैंने दिल में ठान लिया कि मैं यह वीडिया सत्यता की परख की नज़र से देखूंगा और किसी तरह की जातिवादता का शिकार नहीं हूँगा, वीडिया देखने के बाद मैं अपने तौर पर अपने धर्म का ठीक तरह से बचाव नहीं कर सका और इस मुक़ाबिले में हार गया। मैंने सोचा कि जब एक पादरी अपने ईसाई धर्म का बचाव नहीं कर सकता तो मेरे जैसे अनुयायी की क्या हैसियत है। इस मौके पर पहली बार मेरा पैदाइशी ईमान कमज़ोर होना शुरू हुआ और ईसाइयत से तबीयत काफ़ी हद तक उकताने लगी और अन्दर ही अन्दर मन में एक हलचल सी पैदा हो गई, लेकिन इसका हल समझ में न आ रहा था।

"इस्लाम को स्वीकार करने की स्वतन्त्रता"

एक दिन मैं एक फ़िलिपाइनी दोस्त के साथ डार्ट (dart) खेल रहा था, हमारे साथ एक मुसलमान फिलिपाईनी दोस्त भी थे। उनका नाम रिज़वान अब्दुस्सलाम था। मैंने कमरे के एक कोने में ले जाकर उनसे इसलाम के बारे में दरयाफ़्त किया। जबकि हमारे दूसरे फ़िलिपाइनी भाई खेल कूद में मगन थे। रिज़वान ने मुझे कोई लम्बा चौड़ा लेक्चर न दिया बल्कि खेल के ख़त्म

होने पर वह मुझे घर ले गये और मुझे क़ुरआन का अंग्रेज़ी अनुवाद और चन्द पम्फ़लेट दिये। मैंने क़ुरआन का अनुवाद पढ़ने और समझने की कोशिश की लेकिन अनुवाद आसान भाषा में न था इसलिये मुझे इससे कुछ समझ में न आया। पम्फ़लेट वैसे ही थे जैसे मेरी किताब। मुझे इस बात को मानना पड़ा कि रिज़वान साहब ने मुझे इस्लाम स्वीकार करने पर कभी भी मजबूर न किया और न ही मेरे सऊदी इन्चार्ज अब्दुल्लाह साहब ने मजबूर किया। इस तरह जब भी मैं इस्लामी प्रचार केन्द्र में गया तो किसी साहब ने भी मुझ पर ज़ोर न डाला कि बग़ैर सोचे समझे इस्लाम में कूद जाऊँ बल्कि हर एक ने मुझे सिर्फ़ ज़रूरी जानकारी से अवगत कराया और इस्लाम क़ुबूल करने का मामला मेरी अपनी स्वतः की सूझ-बूझ पर छोड़ दिया। इसी वजह से मैं बार-बार प्रचार केन्द्र में चला जाता। अगर कोई मुसलमान मुझ पर दबाव डालता तो शायद स्वभाविक रूप से उनसे दूर भाग जाता।

मुझे इस बात पर ताअज्जुब है कि मेरे पहले दो साल रहने के दौरान मुझसे किसी ने भी इस्लाम के बारे में बात नहीं छेड़ी हालांकि मैं सऊदी अरब जैसे इस्लामी मुल्क में रहता था।

मेरी मानसिक स्थिती

इस गहरे अध्ययन और छान-बीन से मेरे सामने तीन चीज़ें साफ़ हो गईं

1) ईसा अलैहिस्सलाम ख़ुदा (भगवान) नहीं।

2) बाइबल असल शक्ल में नहीं, इसमें गड़बड़ की गई है क्योंकि इसमें अक्सर परस्पर विरोधी बातें मिलती हैं। मेरे धर्म की बुनियाद जो किताब है वह किताब ही सही नहीं तो धर्म कैसे ठीक हो सकता है अगर मैं बाइबल में दिये हुए परस्पर विरोधी विचारों का हल तलाश करने की कोशिश करता हूँ तो मामला और पेचीदह हो जाता है, फिर यह धर्म तो एक ख़ास ख़्याल है जिसे बिना किसी सोच विचार के स्वीकार कर लो, और दूसरी सूरत में इस धर्म से ख़ारिज हो जाओगे।

3) इस्लाम धर्म का यह दावा कि ईश्वर (अल्लाह) के अलावा कोई भी माबूद (देवी देवता) पूजा के योग्य नहीं है। यह विचार काफ़ी साफ़ और सार्वजनिक है। इसने मेरे मस्तिष्क से सारे दबाव दूर कर दिये। मैंने

महसूस किया, अब मैं एक आजाद इन्सान हूँ और अनावश्यक मानसिक उलझनों से पाक हो गया हूँ। इस सुकून की वजह से मैने इस मसले पर और ज़्यादा सोच विचार करना शुरू कर दिया। ख़ास तौर पर मैं दूर दराज़ सफ़र के दौरान कैसेट लगाकर कार में सुनता तो ऊपर वाला ख़्याल और ज़्यादा दिल को छू लेता। अब मेरा मस्तिष्क मुझे आवाज़ दे रहा था कि तुम वास्तविकता से तो आशना हो गए हो। आगे बढ़ो और फ़ैसला करो। मेरा इस हक़ीक़त पर ईमान और यक़ीन इतना बढ़ गया कि मुझे अब यह फ़िक्र न रही कि मैं मुसलमान हो जाऊँ तो मेरे दोस्त और रिश्तेदार क्या कहेंगे। बस अब मैं इस धुन में था कि मुसलमान कैसे बनूं? इसलिए मैं एक दिन भागा-भागा अल-ख़ोबर के प्रचार केन्द्र में गया। मैं ने देखा कि हर कमरे में विभिन्न भाषाओं में लेक्चर हो रहे हैं मैं फिलीपिनी ग्रुप के साथ बैठ गया। हमारे टीचर का नाम फ़रीद ओकेन्डो (Fareed Oquendo) था। ज्योंहि लेक्चर ख़त्म हुआ मैंने उनसे सवाल किया कि इस्लाम क़ुबूल करने का क्या तरीक़ा है? उन्होंने पूछा कि क्या तुम इस्लाम क़ुबूल करना चाहते हो? मैंने फ़ौरन जवाब दिया जी हाँ! अब लोग मेरा मुँह तकने लगे और दिल ही दिल में सोचने लगे कि यह आदमी पहली बार आया है और फ़ौरन इस्लाम क़ुबूल करना चाहता है। मिस्टर फ़रीद ने मुझ से पूछा कि क्या तुम सचमुच इस्लाम क़ुबूल करना चाहते हो और क्या तुमने इस्लाम के बारे में कुछ अध्ययन किया है? मैने दोबारा जवाब दिया - जी हाँ! मुझे इस समय भी यह आश्चर्य हुआ कि मुझे कोई भी आदमी इस्लाम क़ुबूल करने के लिए बाध्य नहीं कर रहा है बल्कि अध्ययन की सलाह दी जा रही है।

इस्लाम स्वीकार करने का मरहला

फ़रीद साहब ने मुझे बताया कि इस्लाम में दाख़िल होने का रास्ता बहुत आसान है। मुझे सिर्फ़ यह कहना होगा कि ईश्वर (अल्लाह) के सिवा कोई पूजा करने के योग्य नहीं और यह कि मोहम्मद (स.अ.व.) अल्लाह के रसूल हैं। इसके बाद फ़रीद साहब ने केन्द्र के सभी लोगों को एक जगह इकठ्ठा किया और मुझे भी अपने साथ वहाँ ले गये। रास्ते में एक सऊदी साहब मिले, जो मुझे कहने लगे कि तुम्हारा चेहरा तो मुसलामनों जैसा है।

आख़िरकार इस पूरे मजमे के सामने एक और सऊदी बाशिन्दे ने मुझे पहले अरबी में और फिर अंग्रेज़ी में ऊपर वाला कलिमा पढ़ाया। इस छोटी मोटी सादा रस्म के बाद सेन्टर का हर आदमी बारी-बारी मेरे गले मिला और मेरा हार्दिक अभिनन्दन किया। साथ ही साथ वह बार-बार बुलन्द आवाज़ से कह रहे थे *अल्लाहो-अकबर, अल्लाहो-अकबर,* (अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बुलन्द व बढ़कर है)। बस अल्लाह ताला (ईश्वर) जिसको चाहे हिदायत (सच्ची राह) फ़रमाता है, अल्लाह जिसको चाहता है चुन लेता है और जो उसकी तरफ़ झुकता है उसे अपनी तरफ़ से ईमान की राह दिखाता है।

जब ईचान साहब मुझे यह बयान दे रहे थे तो उनकी आँखों से खुशी के आंसू बह रहे थे। उनका कहना था कि मेरी ज़िन्दगी में कभी भी ऐसी खुशगवार घटना नहीं घटी। यह प्यारी याद्दाश्त मेरा दिल उछाल देती है। ईचान साहब ने यह भी कहा कि मैं अल्लाह (ईश्वर) का बेहद शुक्रगुज़ार हूँ कि इस्लाम क़ुबूल करने के समय मुझे न शैतान गुमराह कर सका और न ही मेरे हृदय में मेरे मित्रों और रिश्तेदारों का कोई डर पैदा हुआ। ऐसा लगता है कि ईश्वर ने शैतान को मुझसे बिल्कुल दूर कर दिया।

इस्लामी नाम

कलिमा-शहादत के बाद सऊदी भाई ने मुझसे पूछा कि मुझे कौन-सा मुस्लिम नाम पसन्द है? मैंने दिल ही दिल में फ़ैसला किया कि मेरा नाम वही होगा जो उस आदमी का नाम था जिसने मुझसे इस्लाम के बारे में पहली बार इस सेन्टर में बात की थी, क्योंकि उन्होंने बड़े प्यारे अन्दाज से मुझसे इतनी अच्छी बात की थी। मैं उन साहब को पहचानता न था। इसलिए मैंने आदर के साथ किताबें देने वाले साहब से क्षमा मांगते हुए कहा कि आप से जब मैंने किताबें ख़रीदी थी उसके बाद जिन साहब ने मेरे साथ बातचीत की थी उनका नाम क्या है? उसने बताया कि वह ''शेख सालेह'' थे, यह सुनते ही मैने कहा कि मेरा नाम भी ''सालेह'' होगा।

उसके बाद मुझे यह आदेश दिया गया कि घर जाकर स्नान करो, नमाज़ें (पूजा) अदा करो और दुआओं में अल्लाह (ईश्वर) का शुक्र अदा करो जिसने तुम्हें ईमान की राह दिखाई।

मेरी पहली नामज़ (पूजा)

मैंने घर पहुँचते ही स्नान किया और ख़ूब गहरी नींद सोया, सुबह तड़के ही ''फ़जर'' की नामज़ के लिए मस्जिद गया। मैंने मस्जिद में प्रवेश करने में थोड़ी-सी हिचकिचाहट महसूस की। क्योंकि मुझे नमाज़ पढ़ने का तरीक़ा मालूम न था और मेरी समझ में न आता था कि अब क्या करूँ? थोड़ी देर में एक सूडानी भाई का इधर से गुज़र हुआ उसने मेरी हिचकिचाहट को भांप लिया और कहा क्यों रुके हो अन्दर आ जाओ, मैंने उन्हें बताया कि मैंने कल रात ही इस्लाम क़ुबूल किया है और मैं फ़िलहाल नमाज़ पढ़ने के तरीक़े से अन्जान हूँ, सूडानी ने कहाः मस्जिद में आओ मैं तुम्हें बताता हूँ। उन्होंने सबसे पहले इसतिन्जा करने का तरीक़ा बताया फिर वुज़ू करने का तरीक़ा बताया और उन्होंने कहा नमाज़ में सिर्फ़ हमारी पैरवी करो और आख़िर में दुआ करो।

जब मैंने पहला सजदा किया तो मुझे बेहद सकून (संतोष) मिला जिसका बयान मैं नहीं कर सकता। मैं हर रोज़ अल्लाह से यह दुआ करता हूँ कि अपनी कृपा से मेरे दिल में मेरे पहले सजदे की-सी तड़प पैदा कर दे। इसका असर यह हुआ कि मुझपर अल्लाह का एहसान रहा कि मैंने पहले दिन से अब तक कोई नमाज़ नहीं छोड़ी।

इस्लामी शिक्षा की तड़प

मैंने लगातार हर रोज़ प्रचार सेन्टर में जाना शुरु कर दिया और कई घन्टे तालीम (शिक्षा) हासिल करता रहा। मैंने न सिर्फ अरबी अक्षर और शब्द सीखे बल्कि अरबी लिखना और पढ़ना भी सीख लिया। अब मुझे अरबी भाषा का अच्छा ज्ञान हो गया। इसके बाद मैंने क़ुरआन पाक पढ़ना भी आरम्भ कर दिया। मेरी ज़िन्दगी का सबसे महत्वपूर्ण मक्सद यह था कि मैं क़ुरआन पाक सही ढंग से पढ़ सकूँ।

इस सेन्टर में हमारे टीचर अहमद रिकालडी (Ahmed Ricaldi) थे जो कि फिल्पीनी नव-मुस्लिम थे। उनके लेक्चर बहुत दिलचस्प और लाभदायक थे। मुझे इस तालीम (शिक्षा) व तरबियत (दीक्षा) से इतनी मोहब्बत हुई कि मैं इसे किसी तरह भी छोड़ने को तैयार नहीं था। अब मेरी वार्षिक छुट्टी का समय आ गया ताकि मैं अपने मातृभूमि में जाकर अपने माता-पिता से मिल

सकूँ लेकिन मैंने अपनी छुट्टी को मुलतवी करवा लिया ताकि मेरी शिक्षा दीक्षा का सिलसिला जारी रह सके।

इस तालीम के दौरान मुझे यह बताया गया कि सूद (ब्याज) का लेना देना घोर अपराध (हराम) हैं इसलिए मैं जल्दी से जल्दी बैंक की नौकरी से इस्तीफ़ा देना चाहता था, इसी तरह मुझे यह भी बताया गया कि हर वह खाना हराम है जिस पर अल्लाह (ईश्वर) के अलावा किसी की दुआ की जाए, मैं दिलोजान से इस तालीम पर अमल करना चाहता था। अब मेरी ज़िन्दगी एक नए दौर में प्रवेश कर चुकी थी लेकिन मेरे घर और काम के साथियों और अफ़सरों को इसकी कानोकान ख़बर न थी।

एक दिलचस्प घटना

एक दिन हमारे इन्चार्ज अब्दुल्लाह साहब ने हमें एक प्रोजेक्ट के लिए एक दूरदराज़ इलाक़े में जाने का आदेश दिया। हमारी आदत थी कि हम सब घर जाकर इकट्ठा खाना खाते और फिर प्रोजेक्ट पर रवाना हो जाते। मैं इन साथियों से सरक गया और जल्दी-जल्दी वुज़ू करके नामज़ अदा करना चाहता था। अल्लाह का करना ऐसा हुआ कि जब मैं वुज़ू करके नीचे आ रहा था तो सीढ़ियों पर अब्दुल्लाह साहब से आमना-सामना हो गया। मेरा चेहरा और हाथ अभी गीले ही थे कि वह हैरत से पूछने लगे कि क्या माजरा है? मैंने कहा कि वुज़ू किया है नमाज़ पढ़ने जा रहा हूँ। उन्होंने कहा : क्या तुम मुसलमान हो? मैंने कहा जी हाँ, वह बेहद ख़ुश हुए और उन्होंने मुझे आदेश दिया कि नमाज़ अदा करने के बाद तुम प्रोजेक्ट पर मत जाना बल्कि तुम मेरे दफ़्तर में हाज़िर होना। इस दौरान उन्होंने अपने घर फ़ोन किया और अपने घरवालों को ख़ुशख़बरी सुनाई। नमाज़ अदा करने के बाद ज्योंही मैं उनके कमरे में दाख़िल हुआ तो वह मुझे अपने साथ घर ले गए और बहुत बड़ी दावत का इन्तेज़ाम किया। मैं उनके इस इस्लामी जज़्बे और एख़लास से ऐसा महसूस कर रहा था जैसे मैं भी उनकी फ़ेमिली का एक मेम्बर हूँ।

मित्रों की प्रतिक्रिया

मैं पाँच फिलिपीनी साथियों के साथ एक घर में रहता था, हर कमरे में दो दो आदमी थे, मेरे कमरे में मेरा स्कूल और कॉलेज का पुराना साथी था। उसकी दोस्ती निभाने के लिए ही मैं यहाँ सऊदी अरब आया था। हम सब

खाना इकट्ठे पकाते और मिलकर ही खाते और मिलकर ही बाज़ार और खेल के मैदान में जाते। इस सिलसिले में दो घटनाऐं घटीं जो इस प्रकार हैं।

मेरे साथियों ने नये साल के अवसर पर स्वादिष्ट पकवान तैयार किया और मुझे भी खाने की दावत दी, मैंने जवाब में कहा कि मैं इस दावत में इस शर्त पर शरीक हूँगा कि तुम खाने के दौरान किसी प्रकार की दुआ नहीं करोगे। सभी इस बात पर राज़ी हो गये। जब खाने का समय आया तो उन्होंने हमेशा की तरह इस बार भी ईसाईयों की तरह दुआऐं कीं, मैं चुपचाप खाने की मेज़ पर से उठकर चल दिया, क्योंकि उन्होंने वादाख़िलाफ़ी की थी, एक और ऐसी ही घटना घटी, हम सब मिलकर दोपहर का खाना खाते थे मैं हर रोज़ उनसे सरक जाता और अकेले में ज़ोहर की नमाज़ अदा करने के बाद खाने में शरीक होता, इस तरह मुझे अक्सर देर हो जाती। एक दिन मुझे काफ़ी देर हो गई और यह सब खाने से फ़ारिग होकर अपने-अपने कमरों में चले गए सिर्फ़ मेरे कमरे वाला साथी मौजूद था। उसने मज़ाक-मज़ाक में मुझसे पूछाः क्या तुम नमाज़ अदा कर रहे थे? मैंने उससे कहा कि तुमने आज मेरी बात को खोल दिया है। मैं नमाज़ ही तो अदा कर रहा था। उसने कहा कि क्या तुम मज़ाक कर रहे हो? मैंने उसे साफ़-साफ़ बता दिया कि मैं इस्लाम क़ुबूल कर चूका हूँ। उसने यह ख़बर दूसरे साथियों तक भी पहुँचा दी इस तरह हमारी दोस्ती को ज़बरदस्त ठेस लग गई।

इस्लाम छोड़ देने की कोशिश

एक दिन सब फ़िलिपिनी साथी मेरे कमरे में जमा हो गये और मुझे गद्दार वग़ैरह जैसे नामों से पुकारने लगे। फिर मुझसे कई सवाल पूछने लगे जैसे कि इस्लाम क्या है? और क्यों तुम्हे अच्छा लगा? मैं उनकी हर बातों का जवाब अपनी किताबों के हवाले से देता रहा और एक-एक पेज खोलकर उनके सामने पेश करता गया। मेरी ज़िन्दगी में यह पहला मौक़ा था कि इस्लाम के बारे में दूसरों से बहस मुबाहिसा कर रहा था। उनकी पूरी कोशिश थी कि मैं दोबारा ईसाई बन जाऊँ। मैं उनसे विनम्रता और सब्र के साथ पेश आया। उनके पास मेरी बातों का कोई तोड़ नहीं था। आख़िरकार अन्त में उन्होंने अपनी बाइबल बन्द कर दी और साथी ने पूछा कि तुम क्या साबित करने की कोशिश कर रहे हो? मैने कहा कि यह हक़ीक़त है कि ईसा

अलैहिस्सलाम ख़ुदा या ख़ुदा के बेटे नहीं हैं बल्कि अल्लाह के एक पैग़म्बर हैं। इस बात पर उन्हें बहुत निराशा हुई और वह उठकर चले गए इसके बाद इस सिलसिले में हमारी कभी भी बातचीत नहीं हुई। वह हर समय इकट्ठे रहते जबकि मैं बिल्कुल अकेला रह गया। इस अकेलेपन में मुझे साथी की ज़रूरत महसूस हुई। मैने रिज़वान साहब की तलाश शुरू कर दी, वह मकान बदल चुके थे। कुछ कोशिश के बाद मुझे उनका नया घर मिल गया। मैं उनके घर गया वह हज करने के बाद घर पहुँचे ही थे कि मैंने उन्हें अस्सलाम अलैकुम कहा, वह चकित रह गये। मैंने उन्हें बताया कि मैंने इस्लाम क़ुबूल कर लिया है और मैने यह इच्छा भी प्रकट की कि हम दोनों एक कमरे में रहें। ताकि हम इस्लामी तौर तरीक़े पर ज़िन्दगी बसर कर सकें। रिज़वान साहब को यह राय बहुत पसन्द आई और हम दोनों ने जल्द ही एक कमरा किराए पर ले लिया और ख़ुशी-ख़ुशी वहाँ रहने लगे। हम दोनों न सिर्फ जिगरी दोस्त थे बल्कि दोनों भाई भी थे। हम हर रोज़ इकट्ठे ही तालीम के स्थानीय प्रचार सेन्टर मे जाते और हर तरह से एक दूसरे की सहायता करते।

अल्लाह की मज़ीद रहमत

मुक़ामी प्रचार सेन्टर में क़ुरआन पाक की तालीम के लिए एक मिस्री टीचर थे। उनका नाम मोहम्मद था। उनका क़ुरआन पाक पढ़ने का अन्दाज बहुत दिलकश था। वह सेन्टर में आनरेरी तौर पर ख़िदमत अन्जाम देते थे। दिन भर एक संस्था में ख़ादिम की हैसियत से काम करते थे। जिससे अपनी दाल-रोटी चलाते थे। एक दिन मैं और रिज़वान उनके घर मिलने गए। वह एक तंग और अन्धेरे कमरे में रहा करते थे। हर तरफ़ से बदहाली उजागर थी। अलबत्ता उनकी एक अलमारी में क़ुरआन पाक की कई कैसेट जमा थीं। हमने उनसे दरख़्वास्त की थी कि वह हमारे साथ हमारे कमरे में चल कर रहें। न उन्हें किराया अदा करना होगा और न ही बिजली का बिल। हाँ एक शर्त यह है कि वह क़ुरआन पढ़ायेंगे। जनाब मोहम्मद साहब ने ख़ुशी-ख़ुशी हमारी बात मान ली। अब अल्लाह की मेहरबानी से वह रोज़ फ़जर की नमाज़ के बाद हमें क़ुरआन पढ़ाते। इस तरह अल्लाह की रहमत हम पर दिन प्रतिदिन पढ़ती गई।

मेरे ज़ाती कामकाज

मुझे बचपन से ही गिटार (gitar) और प्यानों बजाने का शौक़ था। उनके साथ ख़ूब लै से गाता भी था। इस वजह से मैं गिटार और मुँह का बाजा अपने साथ सऊदी अरब लाया था। चूंकि मैं संगीत का शौकीन था इसलिये मेरे पास संगीत की अच्छे-अच्छे कैसेट भी थे। इस्लाम क़बूल करने के बाद मैंने गिटार और कैसेट सस्ते दामों में बेच करके उनसे निजात हासिल की। एक आदमी ने मुँह के बाजे की तरफ़ इशारा करके उसकी क़ीमत पूछी तो मैंने उसे मुफ़्त दे दिया। इसके अलावा मैं सिगरेट पीने का भी आदी था। इस्लाम क़ुबूल करने के बाद मैंने एकदम सिगरेट पीना छोड़ दिया। एक दिन काम पर एक आदमी को सिगरेट पीते देखकर मेरी ज़ुबान में लहर सी पैदा हुई। लेकिन मैने सब्र व ज़ब्त से काम लेते हुए आज तक सिगरेट को हाथ नहीं लगाया।

इस्लाम स्वीकार करने के बाद माता पिता से पहली मुलाकात

मैं अपनी वार्षिक छुट्टियों पर फ़िलिपाइन जाने की तैयारी कर रहा था। रिज़वान साहब ने मुझे बताया कि उसकी पत्नी और दो बच्चियाँ भी ख़ुदा के करम से मुसलमान हो चुकी हैं और वह मनीला में रहती हैं। और उन्होंने मुझसे यह आग्रह किया है कि मैं उनके घर जाकर घर के लोगों से मिलूं और उनको इस्लाम की तालीम दूँ।

चन्द दिनों के बाद मैं मनीला पहुँच गया। मेरे माता-पिता और परिवार के लोग मेरे स्वागत के लिये एयरपोर्ट पर मौजूद थे। हमारे ईसाई गुरू ने हमें यह तालीम दी थी कि जब माता-पिता से मिलो तो उनके आदर के तौर पर बारी-बारी उनका हाथ अपने माथे पर रखो। जब मैं अपने माता-पिता से एयरपोर्ट पर मिला तो मैंने ऐसा न किया बल्कि बारी-बारी उनका माथा चूमा। दोनों बहुत हैरान हुए। बहरहाल हम ख़ुशी-ख़ुशी घर पहुँच गये।

मेरे पिताजी ने ज़्यादातर नौकरी फ़ौज में की थी। इसका असर उनपर अभी तक बाक़ी था। उनका चेहरा सन्जीदा रहता है और बात भी कम करते हैं। इसके अलावा मेरी माताजी कॉलेज से फ़ारिग होने के बाद बहैसियत टीचर काम कर रही हैं उनसे हर मसले पर बातचीत करना आसान है। मैंने मम्मी से कहा कि मैं इस्लाम क़ुबूल कर चुका हूँ और मुझे सूअर का गोश्त

खाने की इजाज़त नहीं है। इस पर मेरे माता-पिता एकदम से चौंक पड़े और कहने लगे कि हमने ख़ासतौर से तुम्हारे लिए सूअर की पसलियों का सालन तैयार किया है। सूअर की भूनी हुई पसलियां हमारे मुल्क में एक बहुत बड़ी इज़्ज़त की चीज़ समझी जाती है। लेकिन मैंने मम्मी की इस बात को ठुकरा दिया बल्कि उनसे अर्ज़ किया कि मैं सूअर के मांस को हाथ नहीं लगाऊंगा। मेरे माता-पिता ने मेरी बात को मान लिया और मेरे लिए हलाल खाने का इन्तेज़ाम किया।

मैं रिज़वान साहब के घर भी गया और जहाँ तक हो सका उनके परिवार को इस्लाम की तालीम दी। छुट्टियों के बाद सऊदी वापस पहुंच कर मैंने रिज़वान साहब को राय दी कि अपनी फ़ेमिली को इस्लामी सेन्टर के आसपास रखें ताकि उनके लिए न सिर्फ़ इस्लामी तालीम हासिल करना आसान हो जाए, बल्कि वह इस्लामी माहौल में उस पर अमल भी करें। रिज़वान साहब ने मेरी बात मान ली और फ़ौरन मस्जिद के क़रीब एक मकान किराए पर ले लिया इस तरह उनकी पत्नी साहिबा और बच्चियाँ हर रोज़ इस्लामी तालीम हासिल करतीं। यह उनकी ज़िन्दगी में बहुत बड़ा इन्क़िलाब था।

माता-पिता को इस्लाम की दावत

मनीला में रहने के दौरान मैंने माता-पिता और रिशतेदारों को इस्लाम की दावत दी। मुझे इस्लामी दावत देने का तर्जुबा नहीं था। मैने इनसे इस्लाम क़ुबूल करने की पुरज़ोर अपील की और मैं चाहता था के वह जल्दी से जल्दी सच्चाई को पहचानें। इसलिए मेरा उनसे एक झगड़ा सा रहता था। और घर के माहौल में कशीदगी रहती थी। मैं चाहता था कि मेरी दावत का प्रभाव जल्द से जल्द उन पर ज़ाहिर हो। लेकिन कई सालों के बाद मुझे यह बात समझ में आई कि मैंने अपने नातजुर्बेकारी के कारण उन्हें हमेशा कश-म-कश में डाल कर रखा। क्योंकि असल हिदायत तो अल्लाह के हाथ में है न की दावत देने वाले के हाथ में, इसलिए दावत देने वाले को कभी नाराज़ नहीं होना चाहिए बल्कि प्यार और हमदर्दी से काम लेना चाहिए।

फ़िलपीन का मेरा दूसरा सफ़र

इस बार मैं और रिज़वान साहब इकठ्ठे ही फ़िलपीन गए। मुझे यह

देखकर बेहद ख़ुशी हुई कि रिज़वान साहब की फ़ैमिली इस्लामी तालीम और तरबियत से काफ़ी सुधर चुकी थी और उनकी बीवी और बच्चियां इस्लामी हिजाब को अपना चुकी थी। हमारे मनीला के क़याम के दौरान रिज़वान साहब ने हमें दावत दी कि मैं उनकी बड़ी बेटी से शादी कर लूँ मैंने अर्ज़ किया कि इन्शाअल्लाह जल्द ही जवाब दूंगा।

इन दिनों मेरे घर का माहौल बहुत गन्दा था। मैं घरेलू उलझन के कारण समय पर रिज़वान साहब के घर पर न पहुँच सका। इस दौरान वह सऊदी अरब के लिए रवाना हो गए। छुट्टियाँ समाप्त होने के बाद मैं भी सऊदी अरब पहुँचा। मैने मदीना मुनव्वरा से रिज़वान साहब को बज़रिये टेलीफ़ोन अपनी घरेलू मुशकिलात से अवगत कराया और साथ ही उनको इत्तिला भी दी कि मैं उनकी बेटी से शादी के लिये तैयार हूँ लेकिन थोड़ी-सी मोहलत चाहिए।

ईसाई पादरी से मुकालिमा (संवाद)

इस बार मेरी माता ने बड़ी कोशिश की कि मैं दोबारा ईसाई धर्म में वापस आजाऊँ। उन्होने एक पादरी को घर बुलाया जिसने मुझसे काफ़ी देर तक बहस किया लेकिन वह अपने मक़सद में नाकाम रहा।

मेरी मम्मी ने एक और पादरी को घर बुलाया ख़ुद भी हमारे साथ बैठ गईं ताकि हमारी आपसी बात चीत को सुनकर बहस का सही नतीजा निकाल सकें। मेरे पिताजी पौधे को पानी देने के बहाने हमसे थोड़े फ़ासले पर खड़े हो गए। जबकि इनके कान हमारी तरफ़ लगे हुऐ थे। मैंने पादरी के हर-हर सवाल के जवाब में अपनी किताबें खोल-खोल कर रख दीं। इस धर्मगरू (पादरी) के पास कोई ठोस सुबूत नहीं था। आख़िर में हमारे घर से जाते समय कहने लगे कि मैं अपने से बड़े पादरी के साथ दोबारा हाज़िर हूँगा। मैंने उन्हें जवाब दिया कि मुझे इसका बहुत बेताबी से इन्तिज़ार रहेगा। लेकिने मेरे मनीला क़याम के दौरान वह कभी वापस न आए।

पादरी के जाने के बाद मेरे पिता जी हमारे क़रीब आए और मेरी मम्मी से कहने लगे तुम्हारे बेटे का ज्ञान पादरी से ज़्यादा है। मैने ज़्यादा बात न की ताकि मम्मी के जज़्बात को कोई ठेस न पहुंचे ।

यहाँ यह कहना ग़लत न होगा कि इन्सान अपने सच्चे ज्ञान से दुसरे पर हावी हो सकता है। इसलिए इस्लाम ने फ़ायदेमन्द इल्म की ज़रूरत पर हमेशा ज़ोर दिया है।

मेरी ज़िन्दगी का महान मक़सद

मुझे रिश्ते की पेशकश हो चुकी थी। लेकिन मैं शादी से पहले बैंक की नौकरी को छोड़ना चाहता था। मैंने सऊदी अरब में उल्मा से राय ली सब ने बहुत अच्छी राय दी। उनका कहना था कि नौकरी से छुटकारे की पक्की नियत कर लो और दूसरा काम मिलने तक नौकरी न छोड़ो। अगर तुमने नौकरी फ़ौरन छोड़ दी तो तुम्हें अपने मुल्क वापस जाना पड़ेगा।

मैं अरब न्यूज़ में हर रोज़ नई नौकरी के लिए इश्तेहार देखता। एक जगह फ़ैक्स आपरेटर (fax operator) की ज़रूरत थी मैंने वहाँ इन्टरव्यू दिया वह पूछने लगे कि अच्छे काम को छोड़कर मामूली तन्ख़वाह पर क्यों काम करना चाहते हो? मैने जवाव दिया कि एक व्यक्तिगत वजह है। उन्होंने कहा कि तुम्हारी तालीम और लियाक़त इस काम से कहीं बेहतर है इसलिए हम तुम्हें यह काम नहीं दे सकते।

एक और कम्पनी को कम्पयुटर इन्जीनियर की ज़रूरत थी इसके लिए भी मेरी तनख़्वाह मेरी मौजूदा तन्ख्वा से कम थी। जब मैं इन्टरव्यू के लिए गया तो मैंने साफ़ कह दिया इनसे ज़्यादा तन्ख़्वाह का मुतालबा न करूँगा। मुझे अपने काम में तबदीली की बहुत ज़रूरत है। उस फ़र्म ने मुझे क़ुबूल कर लिया और मुझे इस नई कम्पनी में नौकरी मिल गई।

इस में अल्लाह की ऐसी मरज़ी थी कि मुझे दम्माम के बजाय मदीना में काम मिल गया। एक बहुत ही पवित्र स्थान और संतोषजनक शहर में मुझे ज़िन्दगी गुज़ारने का मौक़ा मिल गया।

शादी ख़ानाआबादी (विवाह)

इस्लाम क़ुबूल करने के बाद मैंने सिग्रेट पीना छोड़ दिया था। गन्दे संगीत से भी निजात मिल गई। बैंक की नौकरी से भी छुटकारा मिल गया और मैं अपनी ज़िन्दगी इस्लामी तालीम के मुताबिक़ गुज़ारने की कोशिश कर रहा था। बस सिर्फ़ अब शादी की बारी थी। अगले साल मैं और रिज़वान

साहब दोबारा इकट्ठे फ़िलपाईन गए और मेरी शादी का प्रोग्राम बन गया। मैंने अपने माता-पिता और दुसरे परिवार के लोगों को बताया कि मेरी शादी इस्लामी तरीक़े से होगी। वह मेरी शादी में शामिल होने के लिए राज़ी हो गए।

इस्लामी शादी का तरीक़ा बहुत सादा है और निकाह में तक़रीबन पांच मिनट लगते हैं निकाह के बाद मैंने माता- पिता और रिशतेदारों से कहा मेरी शादी की ज़रूरी रस्म पुर्ण हो गई है इस पर मेरी दादी साहेबा ने ज़ोर- ज़ोर से कहना शुरू किया कि मैंने अभी दुल्हा-दुल्हन को इकट्ठा नहीं देखा जैसा कि ईसाइयों की शादियों में रस्मों रिवाज है। मेरी मम्मी ने उन्हें यह कहकर चुप करा दिया कि यह इस्लामी तरीक़े की शादी है।

अब मेरे माता-पिता मेरी काफ़ी सहायता करने लगे। जैसा कि मैं रमज़ान के चंद दिन भी मनीला में था तो मेरी मम्मी मेरे रोज़े खोलने के लिए अच्छे खानों का इन्तिज़ाम करतीं, छुट्टियों के बाद मैं मदीना मुनव्वरा आगया और कुछ अरसे बाद मेरी पत्नी भी मदीना मुनव्वारा आगई। अल्लाह ने हमें दो बेटियाँ अता की हैं हमने उनका नाम सफ़ा और मरवा रखा है।

इन दिनों मैं बतौर इन्जीनियर डयुटी दे रहा हूँ जो की बहुत मेहनत और ज़िम्मेदारी का काम है। हफ़्ते में एक रोज़ अपनी मरज़ी से मदीना प्रचार केन्द्र में नए मुस्लमानों की मदद कर रहा हूँ ताकि ईमान मज़बूत होता जाए और यह की वह मेरी कहानी से फ़ायदा उठा सकें।

मेरी भी कोशिश होती है कि इस्लामिक युनिवर्सीटी मदीना मुनव्वरह के चन्द स्टूडेन्ट को कम्पयूटर सिखा सकूं। अल्लाह मुझे और मेरी फ़ैमिली को आख़िरत (मौत के बाद की ज़िन्दगी) की कामयाबी अता फ़रमाए - आमीन! मुझे नव-मुस्लमानों और ग़ैर-मुस्लिमों से इस्लाम के बारे में अंग्रेज़ी और फ़िलपाईन भाषाओं में तबादले ख़याल का बहुत शौक़ है।

मेरे ई-मेल का यह पता है। saleh_echon@hotmail.com

***

इब्राहीम सुलेमान

(Ibrahim Suleman)

(नाइजेरिया का एक धार्मिक विद्यार्थी)

हर मज़हब की कोशिश होती है की दूसरे पर अपनी सच्चाई और बड़ापन साबित करे। इस तरह के कार्य दुनिया के बहुत से मुल्कों में जारी हैं। एक मज़हब से दूसरे मज़हब में शामिल होना हर किसी के लिये बहुत महत्वपूर्ण और मुश्किल फ़ैसला होता है। अक्सर माता-पिता का निजी फैसला उनके आने वाली कई नसलों पर हावी रहता है। बच्चे अपने बाप और दादा के मज़हब पर जमे रहने में ही अपनी और अपने समाज की इज़्ज़त समझते हैं। सांस्कृतिक और धार्मिक बंधनों को तोड़ना उनकी नज़र में एक बहुत बड़ा पाप है। इन मुश्किलों की वजह से बहुत-से अक़्लमंद और पढ़े लिखे लोग भी अपने धर्म की किसी दूसरे धर्म से तुलना करने का साहस नहीं करते, बल्कि दूसरे धर्मो के लिये अपने दिलों में भेद-भाव की भावना रखते हैं। हालांकि ऊपर से यह दिखाते हैं कि हम हर तरह के धार्मिक भेद-भाव से पाक हैं मगर अन्दर से वह अपनी मज़हबी सोच और फ़िक्र से संतुष्ट रहते हैं। और अपने दिल की आवाज़ को भी झुठलाते हैं। मगर बहुत लोग ऐसे भी होते हैं जो तमाम भेद-भाव से अपने आप को पाक रखते हैं और सच्चे दिल से सच्चाई की तलाश में लगे रहते हैं। और पैदा करने वाले का यह तरीक़ा है कि वह ऐसे लोगों को ज़रुर सच्चाई से परिचित करवाता है। इब्राहीम साहब की छोटी कहानी इस बात को साबित करने के लिए एक मुनासिब मिसाल है। उन्होंने अपनी कहानी मुझे कुछ यूँ बयान की :–

"मेरा जन्म नाइजेरिया (Nigeria) में हुआ। मेरे दादा मुसलमान थे और उनका नाम सुलेमान था। उनके तीन बेटे थे। उनमें से एक ने दस साल की उम्र में ईसाई पादरियों की दावत पर ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। जब वह बड़ा हुआ तो उसने एक मुसलमान महिला से शादी कर ली और उसे भी ईसाई बना लिया। उसके छः (6) लड़के और एक लड़की थी। मैं उनमें सबसे

छोटा था। मेरी माँ मेरे जन्म के एक हफ्ते के बाद ही परलोक सिधार गई। हम सब भाई-बहन माता-पिता की तरह ईसाई मज़हब पर क़ायम थे, हालांकि हम एक मुसलमान मोहल्ले में रहते थे। मेरे माता-पिता कैनो (Kano) के एक हाई स्कूल में काम करते थे। मेरे पिता स्कूल की लायब्रेरी की देख-भाल करते थे और मेरी माँ विद्यार्थियों के लिए खाना पकवाने की इंचार्ज थी। मैंने भी इसी स्कूल में शिक्षा हासिल की।

मेरे दादाजान ने हम सब के इस्लामी नाम रखे थे। मेरा नाम इब्राहीम था। इसके अलावा हमारे क़बायली (कबीले के) नाम भी थे। लोग हमें अपने क़बायली नामों से ही जानते थे।

हम लोग अपने माता-पिता के पथ पर चलकर ईसाई धर्म का पालन कर रहे थें। मेरे बड़े भाईयों और बहन ने ईसाई घरों में ही शादी की। उनमें से एक बड़े भाई ने चाहा कि वह एक मुसलमान लड़की से शादी करे मगर जब इजाज़त न मिली तो उसने मजबूरन इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। वह मुसलमान तो हैं मगर सिर्फ़ नाम के।

मैं जब हाई स्कूल का विद्यार्थी था तो हमारे शहर में एक सऊदी कान्फ्रेन्स (Conference) हुई। मेरे पिताजी ने मुझे वहाँ काम दिलवा दिया। मेरी ड्यूटी थी कि कान्फ्रेन्स के दौरान उनकी हर तरह से ख़िदमत करुँ। मुझे अरबी भाषा नहीं आती थी इसलिए उनकी बात-चीत मेरी समझ में नहीं आती, मगर वहाँ के एक शेख़ साहब अनुवाद करके मुझे मेरा काम समझा देते और मैं उन लोगों की ख़ूब दिल से सेवा करता।

वह सऊदी ग्रुप हर साल कैनो (Kano) शहर में कॉन्फ्रेन्स करता। अगले साल भी मुझे इसी काम के लिए चुना गया। पहले की तरह इस बार भी मैंने उनकी सेवा में कोई कसर न छोड़ी और वह मेरी ख़िदमत से बहुत ख़ुश हो गए। इस दौरान उस ग्रुप के स्थानीय मेम्बर शेख़ फ़हद साहब ने मुझ से पूछा 'क्या तुम मुसलमान हो?' मैंने उन्हें बताया कि मैं तो ईसाई हूँ। उन्होंने संक्षेप में मुझे इस्लामी विचारों से आगाह किया, मुझे उनकी बातें अच्छी लगी और मैं सोच-विचार में पड़ गया। उन्होंने पूछा 'क्या तुम मुसलमान होना चाहते हो?' मैने उन्हें जवाब दिया कि पहले मैं अपने पिता से इजाज़त हासिल करने की कोशिश करुँगा। मेरे पिता ठंडे दिल के मालिक

हैं, जब मैंने उनको यह बात बताई तो उन्होंने मुझ से कहा कि ''अगर तुझे इस्लाम धर्म पसंद है और इस्लामी विचारों पर तेरा दिल संतुष्ट है तो फिर तुझे मुसलमान बनने से मैं नहीं रोकूँगा।'' तो अगले ही दिन मैने शेख़ फ़हद साहब के हाथों इस्लाम क़ुबूल कर लिया।

हमारे मोहल्ले के ईसाई लोगों ने बहुत हल्ला मचाया। उन्होंने मेरे पिता पर बहुत दबाव डाला कि मुझे इस्लाम क़ुबूल करने की इजाज़त न दें। मगर मेरे पिताजी ने बड़े ठंडे दिमाग़ से उनका सामना किया और उन्हें यह बात समझाई कि मेरे इस फ़ैसले पर वह किसी क़िस्म की कोई रोक-थाम न लगाएंगे।

शेख़ फ़हद साहब ने मुझे नसीहत की कि इस्लाम की राह पर चलने के लिए ज़रुरी है कि मैं इस्लाम की तालीम हासिल करुँ, तो मैंने वहाँ के स्थानीय इस्लामिक सेन्टर में अपना शिक्षण शुरु कर दिया।

मेरी खुशक़िसमती से हमारे पड़ोस में मिसेज़ अब्दुल करीम रहती थीं, उन्होंने इस्लामी शिक्षण में पी.एच.डी. की थीं और एक स्कूल में टीचर की हैसियत से काम भी कर रही थीं। उनके बच्चों को क़ुरआन पढ़ाने के लिए एक उस्ताद साहब आया करते थें। मिसेज़ अब्दुल करीम ने मुझे भी अपने बच्चों के ग्रुप में शामिल कर दिया, इस तरह मुझे क़ुरआन की शिक्षा भी मिलने लगी।

अगले साल फिर सऊदी कॉनफ़्रेन्स हुई, इस बार मेरे इस्लामी ज्ञान को देखकर वह लोग बहुत खुश हुए और मेरे लिए मदीना की इस्लामी युनिवर्सिटी में प्रवेश करने के सारे रास्ते खुल गए। मैं इस युनिवर्सिटी में तीन साल से अरबी सीख रहा हूँ। अगले साल इस युनिवर्सिटी के डिग्री कोर्स में शामिल हो जाऊंगा। फिर चार साल के और शिक्षण के बाद यहाँ से डिग्री लेकर बाहर आजाऊंगा। अब मेरा ईमान बहुत मज़बूत हो गया है और यह इस्लामी ज़िन्दगी मुझे बहुत पसंद है।

मेरे पिता ने मेरी माँ के मरने के बाद दूसरी शादी कर ली थी, जिस से उनके पाँच बच्चे और हैं। ये सब बच्चे भी माता-पिता की तरह ईसाई हैं। इस साल जब मैं गर्मियों की छुट्टियों के दौरान नाइजेरिया गया तो मैंने अपने सगे और सौतेले भाईयों को इस्लाम के बुनियादी उसूल बताऐ और उन्हें

इस्लामी विचारों से आगाह किया। क्योंकि यह तो हर मुसलमान पर फ़र्ज़ है कि वह इस्लाम का प्रचार करे और शुरुआत अपने घर से करे।

अल्लाह की मेहरबानी से मेरे एक बड़े भाई ने सच्चे दिल से इस्लाम क़ुबूल कर लिया है। इसी तरह मेरे दस साल के सौतेले भाई ने भी इस्लाम क़ुबूल कर लिया है और वह भी मिसेज़ अब्दुल करीम के घर क़ुरआन की शिक्षा के लिए जाता है।

मैंने फ़ैसला किया है कि मदीना युनिवर्सिटी से शिक्षा हासिल करके मैं इस धर्म के काम के लिए अपनी ज़िन्दगी गुज़ारुँगा। लोगों तक सही इस्लाम को पहुँचाना ही मेरी ज़िन्दगी का एकमात्र उद्देश्य होगा। और यह फ़ैसला मैंने यूँ ही नहीं लिया है, बल्कि अपने मुल्क नाइजेरिया (Nigeria) में होने वाली ईसाई गतिविधियों को ध्यान में रखकर लिया है। यहाँ पर और बाक़ी अफ़रीकी देशों में कई घरों को इस्लाम से ख़ारिज करने में इसाई संस्थाओं का बहुत बड़ा हाथ है। ये संस्थाऐं पैसे से बहुत मज़बूत हैं और नए ईसाई पर बहुत धन ख़र्च करती हैं। उनके लिट्रेचर भी बेहतरीन होते हैं। उनके कार्यकर्ता इस लिट्रेचर को लेकर घर-घर पहुँच जाते हैं, ये लोग अपना काम बड़ी लगन और चतुराई से करते हैं।

यह बात बड़े खेद के साथ कहनी पड़ती है कि मुसलमानों के पास न तो ऐसे अच्छे लिट्रेचर हैं और न ही इतने सक्रीय कार्यकर्ता। अगर कोई कार्यकर्ता दिल व जान से दावत का काम करना भी चाहता है तो उसे पैसे की कमी हर मोड़ पर महसूस होती है, जिसकी वजह से उसका हौसला पस्त हो जाता है।

मैं इस कहानी से अपने उन मुसलमान भाईयों से अपील करना चाहता हूँ जिनको अल्लाह ने दौलत से नवाज़ा है वह आगे बढ़कर इस्लामी शिक्षण के लिए अफ्रीकी देशों की मदद करें।

अगर आप अफ्रीकी देशों में इस्लामी शिक्षण के लिए कुछ मदद करना चाहते हैं तो आप अबू सलमा साहब से नीचे दिए पते पर सम्पर्क कर सकते हैं :

abusalma99@yahoo.com

जैनेट रोज़

(Janet Rose)

(कैनेडा की एक टीचर)

जैनेट कैनेडा के शहर एडमंटन (Edmonton) में पैदा हुई, उसकी फ़ैमिली कई नसलों से कैनेडा में रहती है। जैनेट ने अपनी छोटी सी कहानी यूँ बयान की।

मैंने प्राईमरी से लेकर हाई स्कूल की शिक्षा एक रोमन कैथोलिक (Roman Catholic) स्कूल में हासिल की। मेरी फ़ैमिली ईसाई मज़हब के रोमन कैथोलिक फ़िरक़े से जुड़ी हुई थी। एक बात मुझे हर वक्त खटकती रहती थी कि ईसामसीह अल्लाह के बेटे कैसे हो सकते हैं? इस बारे में जितना मैं सोचती उतना ही और उल्झन में पड़ जाती।

मैं क़रीब 18 साल की थी जब मैंने हाई स्कूल की शिक्षा पूरी की थी और यूनिवर्सिटी में प्रवेश किया। इसी दौरान मेरी मुलाक़ात एक पाकिस्तानी निवासी ख़ालिद साहब से हुई। और हम दोनों विवाह के बंधन में बंध गए। मेरे पति बहुत पढ़े लिखे तो थे ही मगर साथ ही सुलझे दिमाग़ और अच्छे चरित्र के भी थे। उन्होंने शादी के बाद कभी मुझे इस्लाम क़ुबूल करने पर मजबूर न किया। बल्कि मुझे यहाँ तक आज़ादी दे दी कि या तो मैं अपने होनेवाले बच्चे को ईसाई शिक्षण दूँ या फिर इस्लामी तालीम से परिचित कराऊँ। ख़ालिद साहब के व्यक्तित्व और व्यवहार ने मुझे मजबूर कर दिया कि मैं इस्लाम के बारे में छान-बीन करूँ, मैंने पब्लिक लाइब्रेरी से इस्लाम के बारे में कुछ किताबें हासिल कर लीं और उन्हें ख़ूब एकाग्रता से पढ़ने लगी। इसी दौरान ख़ालिद साहब ने मुझे क़ुरआन पाक का अंग्रेज़ी में अनुवाद भेंट में दिया। क़ुरआन पढ़ने से मुझे ये समझ में आगया कि इस्लाम मेरे बाप दादा के धर्म से बहुत मिलता है। सबसे ज़्यादा मुझे यह बात पसंद आई कि

ये धर्म ईसा मसीह को मानता तो है, मगर उन्हें ख़ुदा के बेटे का दर्जा नहीं देता बल्कि उनकी गिनती ख़ुदा के भेजे हुए मुख्य पैग़म्बरों में होती है। इस किताब को पढ़ने से मेरी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी धार्मिक उलझन ख़त्म हो गई और अपने बच्चे की पैदाईश से पहले ही मैंने इस्लाम क़ुबूल कर लिया और अपनी शादी को हमेशा क़ायम रखने का फ़ैसला कर लिया। जल्द ही अल्लाह ने हमें बेटी से नवाज़ा, इस वक़्त हमारी दो बेटियाँ और दो बेटे हैं।

मैंने इस्लामी ज्ञान अपने पति से हासिल किया, वह हर रोज़ मुझे और बच्चों को तालीम देते और क़ुरआन पाक की कहानियाँ सरल भाषा में बयान करते, इससे मेरा और बच्चों का ईमान और मज़बूत हो गया।

यह अक्सर देखने में आता है कि सास और बहू में कुछ न कुछ खट-पट चलती ही रहती है, मगर ख़ुदा का शुक्र है कि मेरे साथ मेरी सास का व्यवहार इसके बिल्कुल विपरित था। ख़ालिद साहब की माँ हमारे पास कैनेडा आईं तो उनकी मदद से मुझे इस्लामी तौर तरीक़ों को समझने का मौक़ा मिला। मुझे यह कहते हुए गर्व हो रहा है कि ख़ालिद साहब ने मुझे किताबी शिक्षण दिया और मेरी सास ने मुझे सही इस्लामी किरदार और व्यवहार से परिचित कराया। उन के साथ रहने पर मुझे समझ में आया कि वह इस्लामी तरीक़े से एक सास का रोल अदा कर रही थीं और उनके दिल में मेरे लिये जो मोहब्बत और हमदर्दी थी उसकी बुनियाद इस्लाम का शिक्षण है जिसपर वह ख़ुद चलने की कोशिश कर रही थीं। इस लिए अगर सास और बहू सही इस्लामी शिक्षण पर क़ायम रहें तो आपसी अन-बन से दूर रहेंगी।

हम कुछ साल केनेडा के एक दूसरे शहर में भी रहें। वहाँ बच्चों का इस्लामी स्कूल था। मैंने के. जी. (K.G) के टीचर की हैसियत से उस स्कूल में बच्चों को इस्लामी शिक्षण दिया जिससे मुझे खुद भी बहुत फ़ायदा पहुँचा और मेरा ईमान और ताज़ा हो गया। मेरे मुसलमान बनने के बाद मेरे माता-पिता के व्यवहार में मेरे लिये कोई बदलाव नहीं आया। और अब वे भी इस्लाम के बारे में पूछ-ताछ करने लगे हैं। मेरे सारे रिश्तेदार भी मुझसे बहुत अच्छे तरीक़े से पेश आते हैं।

कुछ समय बाद हम दोबरा एडमंटन शहर शिफ्ट हो गये। हम ने कुछ और दोस्तों के साथ मिलकर शहर में इस्लामिक इन्फोरमेशन सेंटर (Islamic Information Centre) स्थापित किया। यह सोमवार से शुक्रवार तक शाम में 6 बजे से 9 बजे तक खुला रहता है। इस में करीब तीन हज़ार किताबें हैं और बहुत सारे कैसेट्स और वीडियो भी हैं। कोई भी मुफ़्त में इन चीज़ों से फ़ायदा उठा सकता है।

इस के अलावा इस सेंटर में फ्री इंटरनेट (internet) सर्विस भी मौजूद है। हर रोज कई मुस्लिम व गैर मुस्लिम लोग यहाँ पर आते हैं और इस्लाम के बारे में जानकारी हासिल करते हैं।

मेरे पति भी हर हफ़्ते टी वी पर इस्लामी प्रोग्राम प्रस्तुत करतें हैं, जिस में मेरा छोटा बेटा खूब बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेता है।

आख़िर में मैं यह ज़रुर कहना चाहूँगी कि इस्लाम क़ुबूल करने के बाद मेरी ज़िन्दगी बहुत संतोषपूर्ण हो गयी है और इस वक़्त मैं एक कामयाब ज़िन्दगी गुज़ार रही हूँ। और अब मेरी यही कोशिश है कि जिस तरह मुझे सत्य की राह नसीब हुई है, और लोगों को भी मैं इस सत्य से परिचित कराऊँ ताकि उनकी ज़िन्दगी और आख़िरत (मौत के बाद की ज़िन्दगी) दोनों ही सँवर जायें।

पढ़ने वाले (Readers) नीचे दिये हुए ई-मेल से मुझे सम्पर्क कर सकते हैं।

isehbai@hotmail.com

***

मरयम

(Maryam)
(चर्च नेता की बेटी का इस्लाम धर्म में प्रवेश)

मरयम साहेबा ने फिलपीन के एक ईसाई घर में जन्म लिया। इनका नाम लिनोर (Leonore) था। इनके पिता इसाईयों के एक गिरजा घर सेवन डे एडवेन्टीस्ट चर्च (Seven Day Adventist Church) के लीडर थे। इस समूह में पादरी को चर्च लीडर या प्रीचर (Leader or Preachar) कहा जाता है। मरयम साहेबा ने अपनी कहानी मुझसे यूँ ब्यान की।

प्रारंभिक जीवन

मैंने अपनी विद्या (10वीं तक) फिलिपीन में पाई। पाठशाला की विद्या पूरी कर मैंने मेडिकल टेकनालॉजी (Medical Technologyy) में B.Sc. की। फिर काम करने 3-साल ईरान (Iran) चली गई, हर साल छुट्टी पर फिलिपीन आती। मेरे पिता चर्च लीडर होने के कारण मेरा पूरा परिवार धार्मिक रंग में रंगा हुआ था। वैसे भी हमें चर्च तालीमात पर गर्व था। इस चर्च का संदेश कुछ इस प्रकार है।

(1) सिग्रेट या शराब पीना मना है। (2) सूअर खाना मना है। (3) ताज़ा तरकारी को प्राथमिकता दें (4) छिलके (scales) वाली मछली खानी जाइज़ है। (5) ईसा (Isa) अलैहिस्सलाम का चित्र या मूर्ती बनाने की अनुमति नही है। (6) सोना या बनाव सिंगार की वस्तुऐं नहीं पहननी चाहिए क्योंकि ऐसी वस्तुओं से भगवान का दिया हुआ असली रूप बिगड़ जाता है केवल घड़ी पहनने की अनुमति है क्योंकि इसकी हर समय ज़रूरत रहती है। (7) बुरी आदतें उदाहरण के लिए बदकलामी करना, लोगों से ईष्या करना मना है। (8) अगर किसी से कोई पाप हो जाए तब वह चर्च के अधिकारियों को बताए, वह आप में सुधार लाने का प्रयत्न करेंगें (9) अगर किसी से बार-बार बद-अख़लाक़ी होती रही तो उसका नाम चर्च के रजिस्टर

(Register) से निकाल दिया जाता है। (10) हमें शनिवार को काम करने की अनुमति नहीं, बल्कि हमारे लिए चर्च जाना ज़रुरी है।

मरयम साहेबा कहती हैं कि इन तालिमात पर वह मन से अमल करतीं और ईसाई धर्म से पूरी तरह से संतुष्ट थीं।

धार्मिक गतिविधियाँ

हम चारों बहनें और हमारी माता जी चर्च के कामों में आगे-आगे रहते। मैं भी पियानों के साथ धार्मिक गीत गाती या कभी गुरूप (Chorus) में गाती। मेरे पिता धार्मिक गीत भी लिखते थे। और मुझे चर्च में मौजूद लोगों के सामने गाने को कहते। इस प्रकार सोसायटी में मेरा बहुत आदर था।

ईरान में नौकरी

मैंने 1975 A.D में एक अस्पताल में मेडिकल टेकनालॉजी का काम आरंभ किया। मेरी लेबोरेटरी का इन्चार्ज एक फिलपिनी डाक्टर था। उसने नौकरी छोड़ दी। अब मैं इस लेबोरेटरी की इन्चार्ज थी। कुछ दिन बाद अस्पताल वालों ने एक भारतीय (Indian) डॉ॰ मिनहाज साहब को ले लिया। मैंने अपना चार्ज उन्हें दे दिया। डॉ॰ मिनहाज साहब ने मुझसे कई बार इस्लाम का परिचय कराने की कोशिश की, इस्लाम धर्म अपनाने को कहा। मैने उनहें साफ़ कह दिया कि मैं कभी भी मुसलमान नहीं बनूंगी, क्योंकि मेरे देश में मुसलमानों को नीची नज़र से देखा जाता है, और हर झगड़े की जड़ समझा जाता है।

अमेरिका का सपना

अधिकांश लोगों की तरह मैं भी अमेरिका जाने का सपना देखती रहती, मैंने कुछ अमेरिका के अस्पतालों में नौकरी के लिए दरख्वास्त भेजी। मुझे लॉस इन्जलेस (Los Angeles) के पास के एक अस्पताल से ऑफर (offer) आया, मैं ईरान की नौकरी से 2-महीने की छुट्टी लेकर अमेरीका पहुंच गई। मैं अपने मित्रों के पास रही, और मैंने अभी नौकरी आरम्भ भी नहीं की थी कि मेरा मन वहाँ कुदरती तौर पर नहीं लगा और मैंने ईरान वापस आकर दोबारा काम शुरु कर दिया। अमेरीका के अस्पताल के इन्चार्ज ने मुझसे कहा, लोग इस प्रकार की नौकरी को तरसते हैं। और तुम हो कि छोड़ कर जा रही हो। शायद अल्लाह को कुछ और मन्ज़ूर था।

इस्लाम की कुछ झलकियाँ

मैं ईरानी टी-वी पर क़ुरआन की तिलावत सुनती और समझती कि यह कोई ईरानी लोगों के गाने होंगें। इसी प्रकार मैं कई बार अल्लाहू अकबर की आवाज़ सुनती और मैं समझती कि यह लोग अल्लाह के साथ अकबर यानी दो भगवानों की पूजा करते हैं। इन्ही दिनों डॉ॰ मिनहाज साहब ने उनके एक मुस्लिम मित्र की लड़की से मेरा परिचय कराया, मुझे उस लड़की का मन भा गया। और मुझे कुछ समय मिलता तो मैं उनके घर चली जाती। और अगर मैं उससे किसी इस्लामी विषय में पूछती, तब वह मुझे उसका छोटा सा उत्तर दे देती।

मेरे मन की नर्मी

जब मैं अपने मित्र को नमाज़ पढ़ते देखती तो मुझे ऐसा लगता कि वह इसमें डूबी हुई है। उसकी इबादत में लगाव और गहराई को देख कर मुझ पर गहरा प्रभाव हुआ। मैंने महसूस किया कि इनकी इबादत का तरीक़ा हमारे इबादत से बहुत उत्तम है, हम म्युज़िक (music) का सहारा लेते हैं, फिर भी इस्लामी इबादत के तरीक़े यकीनन बहुत उत्तम है। मेरे मन ने पहली बार महसूस किया कि इस्लाम एक बेहतर धर्म है। इससे कुदरती तौर पर मेरा दिल नरम हुआ। और इस्लाम की ओर मेरे मन का झुकाऊ हो गया।

हक़ीक़त यही है कि अल्लाह तआला ने नमाज़ का तरीक़ा ऐसा रखा है कि जिसके मन में पहले से भेद-भाव नहीं वह यह देख कर हैरान हुए बिना नहीं रह सकता। इसी विषय पर एक और घटना सुन लीजिए जो दिलचस्प है।

अमेरिका के प्रेसिडेन्ट निकसन के धार्मिक विषयों के सलाहकार का नाम बाब क्रेन (Bob Crain) था। इन्होंने कैलिफ़ोरनिया की एक मस्जिद में भाषण देते समय अपनी सच्ची घटना सुनाई।

मुझे प्रेसिडेन्ट निकसन (President Nixon) ने अमेरिकी मुसलमानों के लीडरों के पास भेजा ताकि उनके हालात और विचारों को जान सकूँ। मैंने सुबह से दोपहर तक उन लीडरों के साथ एक लंबी मीटिंग की, उन्होंने दोपहर के समय कहा कि हम पहले नमाज़ पढ़ लें, फिर लंच (Lunch) करेंगे। मैंने सोचा कई घंटों से उनके साथ हूँ। अब कहीं दूर चला जाऊँ तो वह क्या

विचार करेंगे यह मन में लाकर वहीं उनके नमाज़ के स्थान के पास बैठ गया, मैं नमाज़ के बीच उनकी आजिज़ी और उनका इसमें डूब जाना, देख कर दंग रह गया, मैंने सोचा इतने पढ़े-लिखे और बुद्धिमान लोग अपने आप को अल्लाह के आगे किस अदब व नर्मता से पेश करते हैं। और यह महान लोग अपना माथा धरती पर टेक देते हैं। इनके इबादत के इस सादापन ने मेरे मन को मोह लिया। मेरे दिल में विश्वास हो गया कि इस्लाम, ईसाइयत से उत्तम है। और मुसलमान लीडरों के नमाज़ के बाद मैंने कलिमा शहादत पढ़ा और उनका इस्लामी भाई बन गया। अल्लाह से दुआ है कि हम सबको अल्लाह नमाज़ सुकून से पढ़ने की तौफ़ीक़ दे ताकि हर नमाज़ सन्देश पहुँचाने का कारण बन जाए। अब हम असली कहानी पर लौटते हैं।

इस्लाम की ओर मेरा सफ़र

अब मैंने मालूमात हासिल करने के लिए मुसलमान मित्र से सवाल करना आरंभ किया। उदाहरण के लिए मैंने हिजाब के बारे में पूछा, इसने कहा "यह तो इज़्ज़त आबरू (Modesty) औरत की इज़्ज़त की रक्षा करता है। बद किरदारी, घमण्ड और घटियापन (Cheapness) से बचाता है।" मुझे यह बात बहुत अच्छी लगी। मैंने पूछा मैं अक्सर अल्लाहू अकबर सुनती हूँ इसका क्या मतलब है, उसने कहा अल्लाहू अकबर का अर्थ है। अल्लाह सबसे बड़ा है और उस जैसा कोई नहीं है। मैंने अपने मन में सोचा तौरात में भी यही कुछ लिखा है, क्योंकि तौरात के 10 कमाँन्ड़मेन्टस (Ten Commandments) का पहला आदेश यही तो है। अल्लाह सबसे बड़ा है, यह बात मुझे मन की गहराई से बहुत पसंद है। और यह बहुत अच्छी बात है कि मुसलमान हर अज़ान में इसका प्रचार बार-बार करते हैं और ख़ूब याद-दिहानी कराते हैं। (याद रहे कि ईसाइ न केवल बाईबल (इन्जील) बल्कि तौरात पर भी विशवास रखते हैं, हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि॰) कहते हैं यही उपदेश क़ुरआने पाक में सूरत बनि इसराईल की आयत 22-38 में हैं (तफ़सीरे मज़हरी) एक अल्लाह का एक ही उपदेश)।

अब मुझे इस्लाम के बारे में जानने की फ़िकर हर दिन बढ़ती गई। चूँकि मुझे ईसाइ धर्म पर काफ़ी जानकारी थी इसलिए मेरे सवालों का उत्तर आलिम(ज्ञानी) ही दे सकता था। हमारे पास की मस्जिद में एक बंगाली

इमाम साहब थे, जो इंगलिश भी अच्छी बोल सकते थे, मैं उनके पास जाकर अपने प्रश्न पूछती रहती। उन्होंने मेरे सवालों का बहुत अच्छे ढ़ंग से उत्तर दिया। और मेरे साथ काफ़ी समय गुज़ारा, इस प्रकार मेरी शंकाऐं इस्लाम धर्म से समाप्त हो गईं और मैंने ईमाम साहब से कहा मैं मुसलमान बनना चाहती हूँ। ईमाम साहब ने मुझे कलिमा शहादत पढ़ाया और इस प्रकार मैं मुसलमान बन गई । (*अलहमदुलिल्लाह*)।

अब डॉ॰ मिनहाज साहब ने मुझे विवाह करने को कहा, ताकि इस प्रकार इस्लाम को समझना और इस पर चलना असान होगा। मैंने डॉ॰ मिनहाज साहब की सलाहियत, उनके चाल-चलन को देख कर उनसे विवाह करने का फ़ैसला किया। जब डॉ॰ मिनहाज साहब को पता चला तब वह मुझ से बार-बार प्रश्न करते, क्या तुम मुझ से विवाह करने के लिए मुसलमान हो रही हो, मैंने उन्हें विशवास दिलाया कि यह मेरे मन की पुकार है।

मैं इस्लाम धर्म से राज़ी हूँ मेरे इसलाम स्वीकार करने का विवाह से कोई संबन्ध नहीं है। यह बात सुनकर डॉ॰ मिनहाज साहब मुझसे विवाह काने पर राज़ी हा गए।

माता-पिता को संदेशा

मैंने अपने पिता को तार भेजा, इसमें लिखा मैं मुसलमान हो चुकी हूँ, और एक मुसलमान डॉ॰ से विवाह करना चाहती हूँ, अगर आप इसके विरुद्ध हैं तो बताऐं। मेरे माता पिता बहुत पड़े-लिखे और खुले मन के लोग है। उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि तुम एक बुद्धिमान महिला हो अगर तुम इस्लाम से प्रभावित हो तो कोई दुख नहीं, लेकिन केवल विवाह के लिए इस्लाम में जाना सही नहीं है। यह वही बात थी जो मुझे डॉ॰ मिनहाज ने कही। हर सच्चा आदमी (मुखलिस) यही तो सलाह देगा। इस प्रकार मैंने ख़ुश होकर डॉ॰ मिनहाज से विवाह कर लिया।

इस्लामी विद्या

मेरे पति एक नेक दिल और सच्चे मुसलमान हैं। इनके उत्तम इस्लामी रख-रखाव के बिना पर मुझे इस धर्म को सीखने में कठिनाई नहीं हुई। इनही दिनों में शेख़ अहमद दीदात (Ahmed Deedat) का टेप देखा जो इस्लाम ईसायत की तुलना पर था, देखने से मेरे बचे-कुचे शक भी जाते रहे। मैंने

डॉ॰ जमाल बदवी साहब के कई प्रोग्राम्स टी-वी (T.V) पर देखे, इस से मेरी इस्लामी चिंता में वृद्धि हुई, मैं हर मुसलमान को सलाह देती हूँ कि वह डॉ॰ जमाल बदवी (Dr. Jamal Badwi) साहब के वीडियो (Video) अवश्य देखे।

मैं अरबी भाषा बिल्कुल भी नहीं जानती थी। मिनहाज साहब ने विवाह के तुरंत बाद मुझे अरबी सिखाई और फिर अल्लाह की मेहरबानी से क़ुरआन पढ़ाना आरंभ किया। हम प्रति दिन फ़जर की नमाज़ के बाद 45 मिनट के लिए क़ुरआन पाक पढ़ते। अल्लाह की कृपा से मैंने एक ही वर्ष में क़ुरआन पाक पूरा पढ़ लिया और इस के अतिरिक्त इसका इंग्लिश में अनुवाद भी पढ़ती रही। इस से मेरे ईमान में और मिठास आई।

सऊदी अरब में आना

ईराक़ और ईरान में चले लंबे युद्ध के कारण हमें 1983 A.D में ईरान छोड़ कर सऊदी अरब आना पड़ा। मिनहाज साहब को यहाँ सऊदी अस्पताल में नौकरी और मेरे तीनों बच्चों को सऊदी स्कूलों में एडमिशन मिल गया। इस प्रकार मेरे बच्चों को सऊदी स्कूलों में अच्छी तालीम मिली। अल्लाह की कृपा से मेरी बड़ी लड़की (फ़ातिमा) अजनबी (गैर सऊदी) होने के बाद भी अपने स्कूल की 6^{th} क्लास में 105 ऐक सौ पाँच लड़कियों में पहली पोज़ीशन जबकि छोटी बेटी (ज़ुवैरिया) न केवल अपने स्कूल में बल्कि, इस ने मदीना मुनव्वरा के सब स्कूलों के हदीस के मुक़ाबले में दूसरी पोज़ीशन हासिल की। मैं घर में होमवर्क में उनकी सहायता करती। इसी प्रकार अपने बच्चों से आरंभिक अरबी सीख ली, मुझे इस से बड़ी प्रसन्नता है हम पिछले 24-वर्षो से मदीना पाक में रह रहे हैं। छुट्टियों में कभी इण्डिया कभी फ़िलिपिन जाते हैं। अब फ़ातिमा डेन्टिस्ट (Dentist) और जुवैरिया डॉक्टर का काम कर रही हैं। लड़के ने भी युनिवर्सिटी की तालीम के बाद अपनी एक बिज़नेस (Business) फ़र्म बनाई है।

हिन्दी सास को ख़त लिखना

शादी के तुरंत बाद ही मैंने उर्दू बोलना और लिखना सीख लिया था। ताकि मैं अपनी सास साहिबा से बात कर सकूँ जो भारत में रहती हैं। उन्हें इंग्लिश नही आती मैं उन्हें छोटे-छोटे पत्र लिखती, जैसे कि आप कैसी हैं,

आप हम दोनों की ओर से सलाम क़ुबूल करें, उनकी आँखें दुखती थीं इसलिए अपनी बेटी के द्वारा मुझे उत्तर देतीं, मेरे सभी भारतीय परिवार के लोग मेरी आव भगत करते हैं।

एक बार डॉ॰ मिनहाज साहब की कुछ बहनें उमराह पर मदीना आई तो लेखक के घर भी आईं। मैंने उनसे मरयम के बारे में पूछा। उनमें से एक कहने लगी। हम सब मिल-जुल कर एक ही घर में रहते हैं। एक बार जब मरयम छुट्टियों में इण्डिया आई तो देखा लग-भग आधी रात का समय था वह अपनी चारपाई पर लगी हुई मच्छर दानी के अन्दर टार्च जलाए बैठी हैं। मुझे फ़िक्र हुई, मैंने सोचा शायद वह बीमार हैं। पर मरयम ने कहा मैं बिल्कुल ठीक हूँ, मुझे तीनो बच्चे दिन भर मसरुफ रखते हैं और क़ुरआन शरीफ पढ़ने का समय नहीं मिलता। इसलिए मैं अब क़ुरआन शरीफ पढ़ रही हूँ, यह सुनकर मेरी चिन्ता दूर हुई। काश हम पैदाइशी मुसलमानों में भी ऐसा लगाव आए। (आमीन)

मैंने मरयम साहिबा से पूछा, जुबान, रस्म-रिवाज, लेन-देन में कभी इण्डियन रिशतेदारों से अन-बन तो नहीं होती। मरयम साहिबा ने कहा मेरा सब परिवार मेरी काफ़ी सहायता करता है। अगर आप इस्लामी शिक्षा का पालन करते हैं, तो कोई मुश्किल हो ही नहीं सकती, ख़ूब जान लेना चाहिए कि घरेलू झगड़े इन्सान के ख़ुद बनाए हुए हैं। इन्सान का अपना राक्षस ही उसे नाच नचाता है। सास-बहू की लड़ाई एक जहालत है। और बेइमानी के कारण है।

फ़िलिपीन में छुट्टियाँ

मैं फ़िलिपीन अपने पति और बच्चों के साथ तीन बार और केवल बच्चों के साथ दो बार गई, मेरे माता-पिता और मेरी बहनों और भाईयों ने खुले दिल का परिचय दिया। विशेषकर मेरे पति के अख़लाक़ देख कर वह उनके दीवाने हो गऐ। जब हम पहली बार गऐ तो हमने उनहें साफ़ बता दिया था कि हम क्या खा सकते हैं और क्या नहीं। वह हमारे लिए ज़िन्दा मुर्गे लाए फ़िर मेरे पति ने उन्हें हलाल किया। इस प्रकार उन्होंने हमारी मर्ज़ी के अनुसार हमारी आव-भगत की।

जब मैं केवल बच्चों के साथ गई तब मेरे पिता ने कहा, हम मुर्ग़े को तुम्हारे पति के तरीके से काटते हैं, मैंने कहा केवल काटना नहीं बल्कि कुछ पढ़ना भी पड़ता है। उन्होंने कहा तुम पढ़ना हम काट देंगें, मेरे भाई ने मुझे और तसल्ली देने के लिए कहा हम मुर्ग़े को उसी प्रकार से फेंक देंगे जिस प्रकार से तुम्हारे पति ने आधा गला काट कर फेंका था ताकि सारा ख़ून निकल जाए। मैंने उनकी सहायता के लिए उनको धन्यवाद दिया। वहाँ पर अधिकतर डब्बे में बन्द मछली और सब्ज़ी खा कर गुज़ारा किया।

मेरे पिता नर्म दिल, पढ़े-लिखे बड़े दिल और क़ाबिल आदमी थे। और एक बहुत बड़े चर्च के लीडर थे। उन्होंने एक बार अपनी बीमारी के दौरान मुझे बताया कि मैं भी ईसा अलैहिस्सलाम (Jesus) के ताअल्लुक़ से अपने ईमान के बारे में उलझन का शिकार हूँ। इसके कुछ ही दिन बाद उनका देहाँन्त हो गया।

मेहनत और शिक्षा से प्रेम

मरयम साहेबा को पुस्तकें पढ़ने का बहुत शौक़ है। कुछ वर्ष पहले उन्हें क़ुरआन शरीफ़ का इंगलिश अनुवाद मिला, इस में अरबी के प्रति अक्षर का इगंलिश में अनुवाद था। और उसके बाद पूरी आयत का अनुवाद था। डॉ॰ मिनहाज साहब ने मरयम साहेबा से कहा कि मैं तुमहें यह क़ुरान का अनुवाद ख़रीद कर ला दूंगा। मरयम साहेबा ने कहा मैं यह अनुवाद इनसे कुछ दिन के लिए ले लूँगी और मैं ख़ुद अपने हाथ से हर शब्द का अनुवाद लिख लूँगी। इस प्रकार वह इस प्रोजेक्ट पर पिछले 1½ वर्ष से काम कर रहीं हैं। दुआ है कि अल्लाह इस काम में उनकी सहायता करे।

विचार कीजिए पैदाइशी मुसलमान गर्व से कहता है कि मैंने रमज़ान में क़ुरआन को तीन बार ख़त्म कर लिया है। लेकिल एक सूरत या एक पारे का भी अनुवाद नहीं पढ़ता। अल्लाह ताआला क़ुरआन में कहते हैं कि तुम क़ुरआन पर ग़ौर क्यूं नहीं करते। क्या इनके दिलों पर ताले लग गये हैं। दुआ है हमें भी मरयम साहेबा की तरह क़ुरआन पढ़ने, समझने और इसके बताए हुए मार्ग पर चलने की हिम्मत दे (आमीन)।

इन सच्ची कहानियों के लिखने का लक्षय यही है कि हम (पैदाइशी) मुसलमान अपनी ज़िद और पुराने रिवाज़ को छोड़ कर अपने आप को बदल कर अल्लाह को ख़ुश करें।

डॉ॰ इक़बाल रहमतुल्लाह अलैह ने कहाः

दरसे क़ुरआन न अगर हमने भुलाया होता।
यह ज़माना न ज़माने ने दिखाया होता।
चाट ली तुमने कुतुब फ़ल्सफ़ा व इंगलिश की।
हाथ भूल से भी क़ुरआन को लगाया होता।

मिसाली पड़ोसी

मुझे गर्व के साथ कहना पड़ता है कि मैं मदीना मुनव्वरा में डॉ॰ मिनहाज साहब का पड़ोसी हूँ, हमारी मुलाक़ात कम से कम एक बार फ़जर की नमाज़ में हरम में होती है। मरयम साहेबा और मेरी पत्नी डॉ॰ सूफ़िया साहेबा मिल कर बहुत प्रसन्न होती हैं। मिनहाज साहब हर हफ़ते एक बार सुन्नते रसूल (सल्ल॰) के अनुसार तरह मस्जिदे क़ुबा जाते हैं। और इशराक़ की नमाज़ के बाद घर लौटते हैं। अल्लाह से दुआ है कि हमें इस मिसाली घर की तरह बना दे। अल्लाह का निज़ाम है कि ख़रबूज़े को देख कर ख़रबूज़ा रंग पकड़ता है।

***

एक हिन्दू लेडी(महिला) डॉक्टर का इस्लाम में प्रवेश

इस बात का कोई इनकार नहीं कर सकता कि भारत हर प्रकार से दिन-दुगनी रात चैगुनी उन्नती कर रहा है। इसकी गँगा-जमनी सोसायटी बड़ी पुर-कशिश(आकर्षक) है। हर समाज में कुछ कमियाँ भी होती हैं। यह देखने में आता है कि अगर कोई व्यक्ति अपनी समझ-बूझ और सदज्ञान से, दूसरे धर्मों की तुलना और अपनी खेाज के बाद यह फ़ैसला करता है कि, उसे हिन्दू धर्म छोड़ देना चाहिए। अतः जब यही बात उसके क़रीबी परिवार वालों को मालूम होती है, तब वह उसकी जान के पीछे पड़ जाते हैं। और उस पर ज़ुल्मों-सितम-अत्याचार के पहाड़ टूट पड़ते हैं। बड़े खेद की बात यह है कि, बहुत-अधिक पढ़े लिखे और समझदार लोग भी इस पर ठण्डे दिल से विचार करने की बजाए, उल्टा ज़ुल्म और ज़बरदस्ती करने में आगे-आगे रहते हैं। और इन्सानी हुक़ूक़(मानवाधिकार) की परवाह नहीं करते। यह नस्लों से चला आ रहा है। यह बात एक हिन्दू लेडी-डॉक्टर के इस्लाम धर्म में प्रवेश से सिद्ध हो जाती है। इसी कारण मैं इन लेडी-डॉक्टर साहिबा का नाम और कुछ स्थानों के नामों को यहाँ नहीं लिखूँगा। ऐसे माहौल में इस्लाम धर्म स्वीकार करना, बहुत बड़े हौसले और बड़े सौभाग्य की बात है। मुझे इन डॉक्टर-साहिबा से मदीना मुनव्वराह, सऊदी अरबिया में मिलने का मौक़ा मिला। उन्होंने अपनी कहानी यूँ बयान की।

मेरा बचपन

मैं 1973 में देहली शहर में एक राजपूत ख़ानदान में पैदा हुई। मैंने अपनी आरम्भिक शिक्षा आरयन (Aryans) स्कूल में पाई। हिन्दुओं का यह फ़िरक़ा मूर्ती पूजा नहीं करता। यह लोग श्लोक (Shlokaas) धार्मिक गीत गाते हैं। यह लोग हिन्दू धर्म की पुस्तकें वेद (Vedaas) में विश्वास रखते हैं। मैंने भी वेदों के कइ मँत्र याद कर लिए। इस स्कूल में मेरी सबसे क़रीबी मित्र का नाम नय्यर जहाँन (Nayyar Jahan) था। हम दोनो खेलों के

पीरियड के समय क्लास से गायब हो जाते, और किसी जगह अकेले बैठकर हम एक दूसरे से बात-चीत करने में मशगूल हो जातीं। उदाहरण के लिए नय्यर जहॉन ने उस समय मुझे हज़रत इब्राहीम (अलै॰) की कहानी सुनाई। और बताया कि हज़रत इब्राहीम (अलै॰) किस प्रकार अपने प्यारे पुत्र को अल्लाह तआला की रज़ा(अल्लाह की खातिर) के लिए क़ुरबान करने को तैयार हो गए। 5-वीं-कलास के बाद मैं उस स्कूल से दूसरे स्कूल में चली गई। इन इस्लामी कहानियों को सुनने के बाद भी मुझ पर इस्लाम का प्रभाव नहीं हुआ या फ़िर दिलचस्पी पैदा नहीं हुई। लेकिन इस प्रकार मेरे मन में कुछ इस्लामी निशान ज़रुर बैठ गए।

एक मासूम लड़की

जब मेरी उम्र 6-साल की थी मैं अपनी दादी-माँ के शहर मुज़फ्फर नगर (यू॰पी) जाया करती थी। उनके घर के पास-पड़ोस में मुसलमान रहते थे। मैं अकसर करीब की मस्जिद की अज़ान सुनती। मुझे वह आवाज़ बहुत अच्छी लगती थी। मैं मोअज़्ज़िन साहब के साथ ऊँची आवाज़ में उनके साथ उनके अलफाज़ दोहराती। इस पर मेरी दादी माँ मुझ से नराज़ हो जातीं और बार-बार मुझसे चुप रहने को कहतीं। यह बात मेरे बस में नहीं थी। मैं फ़िर भी अज़ान को ऊँचे अवाज़ से दोहराती ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि हर मासूम बच्चा पैदाइशी तौर पर मुसलमान होता है। लेकिन फ़िर उसका परिवार, माहौल उसको या तो हिन्दू या ईसाई या फ़िर यहूदी बना देता हैं। इसके अतिरिक्त मैं यह भी देखती के मुस्लिम बच्चे अपने बगलों में क़ुरान दबाए रोज़ मस्जिद जाते हैं। मुझे यह मन्ज़र(दृष्य) बहुत अच्छा लगता। मेरे मन में भी आता कि काश मैं भी एसा कर सकूँ। मैं यह समझती कि शायद मस्जिद के अंदर कोई कब्र होगी जिसकी यह पूजा करते हैं। एक दिन ऐसा इत्तेफ़ाक़ हुआ कि ईमाम साहब के मस्जिद से बाहर निकलते ही मैं भाग कर मस्जिद में घुस गई। और अंदर चारों-ओर ग़ौर से देखने लगी, लेकिन कोइ कब्र नज़र नही आई।

मूर्तियों की पूजा-पाठ

जैसा कि मैं बता चुकी हूँ, मैं एक राजपूत परिवार में पैदा हुई। हम हिन्दू धर्म को दिलो-जान से चाहते और इस पर चलते हैं। हमारे घर में एक

कमरा था जिसमें लग-भग 20 मूर्तियॉ थीं। हम ने यह मूर्तियाँ बाज़ार से समय-समय पर खरीदी थीं। हम एक दिया हाथ में लिए इन बुतों की पूजा करते, और लोगो के लिखे हुए मन्त्र पढ़ते। हालॉकि मेरे सब भाई-बहन बहुत पढ़े-लिखे थे। मेरे घर वाले मुझे पवित्र (मुक़ददस) समझते, और पूजा की शुरूआत मुझसे करवाते। एक दिन मेरी एक बहन ने सब बुतों की पूजा की, लेकिन एक बुत की नही की, मैंने उसे कहा तुम इसकी भी पूजा करो नहीं तो यह रात को सपने में तुम्हें तंग करेगा। उसने झट-पट उसकी भी पूजा की। मेरा परिवार पूजा करने के लिए मन्दिर कभी-कभार ही जाता। मेरे माता-पिता का ख्याल था कि मन्दिर में पूजा पाठ में दिखावा अधिक होता है। और नौजवान लड़के-लड़कियों का मेल-मिलाप (inter mixing) अधिक होता है। पूजा के अतिरिक्त हमारा परिवार हिन्दू उसूलों पर भी सख्ती से अमल करता। मिसाल के लिए अगर कोई मुसलमान हमारे कपड़ों को छूता, हम उनको गँगा जल (पानी) से धोए बिना नहीं पहन सकते थे।

मेरे पिताजी इण्डियन सेना में ऑफ़िसर के पद पर काम कर रहे थे। मेरी माताजी की शिक्षा 12-वीं जमात तक हुई थी। हमारी एक मिडिल क्लास फैमिली (family) थी। हम अपने माता-पिता का बड़ा आदर करते और उनका कहना मानते थे।

इस्लाम धर्म की हक़ीक़त

जब मैं 9-वीं जमात में पढ़ती थी, मेरा स्कूल एक सरकारी स्कूल था। जिसका नाम एन्ड्रिव गंन्ज स्कूल (Andrew Ganj School) था। मेरी प्रिय मित्र का नाम शबाना तरन्नुम (Shabana Tarannum) था जो कि एक मुस्लिम लड़की थी। मैं उसकी आदतों (चाल-चलन) और रहन-सहन से बहुत प्रभावित थी। फिर भी मेरा झुकाव इस्लाम की तरफ न हुआ। क्युँकि मैं समझती कि यह शबाना की निजी खूबियाँ हैं ना कि इस्लाम धर्म की।

जब मैं और बड़ी हुई, तब मैं मुसलमानों की खुल कर बुराई करती। यह सब,माहौल,मीडिया, राजनिती और मॉ-बाप के कारण था। मेरी आयु के बच्चों की तरह, मैं यह कहती की मुसलमान धोकेबाज़ हैं। वह हमारे देश में रहते हैं, लेकिन पकिस्तान से प्रेम करते हैं और उनकी वफ़ादारियॉ पकिस्तान के साथ हैं (जो एक मुस्लिम देश है) इस्लाम एक बहुत बुरा धर्म है जो

देश-द्रोहियों को जन्म देता है। भारत केवल हिन्दुओं के लिए है, जिससे हमें अटूट प्रेम है। मुसलमान हमारे लिए बोझ हैं।

कालेज का जीवन

कॉलेज जीवन में हर एक को एक नई आज़ादी मिलती है। कॉलेज के दो साल मैंने अच्छे नम्बरों (मेरिट)(merit) से पास किए। तीसरे साल देश भर में विद्यार्थी जलसे-जुलूस निकालने लगे जिसका कारण था मंडल कमिशन (Mandal Commission) की रिर्पोट, जिसके द्वारा अल्प संख्यकों को भी कालेजों में सीटस आरक्षित की गई। यह फ़साद इतना फ़ैल गया कि सारे कॉलेज बन्द कर दिए गए। छात्रों के पास फ़ैशन में एक दूसरे से आगे बढ़ने और होटलों में बैठ कर आपस में गप्पें मारने के अतिरिक्त कोई कार्य नहीं रहा था। मैं एक दिन देहली के रूसी कलचरल सेन्टर (Russian Cultural Center) के टी-स्टाल पर एक कशमीरी मित्र, शकील नामीं लड़के से मिली। मैंने बेझिझक उससे कहा कि, तुम देश भक्त नहीं हो। इस्लाम एक बुरा धर्म है। अगले दिन एक कशमीरी छात्र ने मुझे क़ुराने-करीम का इंग्लिश अनुवाद दिया। फ़िर एक हफ्ते बाद हज़रत मोहम्मद (S.A.S) के जीवन पर लिखी एक पुस्तक भेंट दी। मैंने इन दोनों पुस्तकों को बुक शेल्फ़ में फेंक दिया और इन का एक शब्द भी नहीं पढ़ा।

इस्लाम धर्म की एक झलक

एक दिन मैं घर में बेकार बैठी थी। मेरी दादी माँ ने कहा कि मैं उनके पैर दबाऊँ। यह काम बहुत बोरिंग(boring) था। मैंने इस काम को आसान और दिलचस्प बनाने के लिए साथ एक पुस्तक भी पढ़नी शुरू की। यह पुस्तक हज़रत मोहम्मद (S.A.S.) के जीवन पर लिखी थी। उसमे लिखा था कि जब आप (S.A.S.) एक बुढ़िया के घर के आगे से गुज़रते तब वह आप (S.A.S.) पर हर रोज़ गंन्दा कूडा-करकट फ़ेंकती। एक दिन आप (S.A.S.) इस बुढ़िया के घर के आगे से गुज़रे । तब आप (S.A.S.) को वह बुढ़िया दिखाई नहीं दी। आप (S.A.S.) ने लोगों से इसके बारे में पूछा। लोगों ने बताया की वह सख़्त बीमार है। आप (S.A.S.) ने उसके दरवाज़े पर दस्तक दी। वह बुढ़िया आप (S.A.S.) को देख कर कहने लगी, ऐ

मोहम्मद(S.A.S.)! क्या तुम मुझ से बदला लेने आये हो। आप (S.A.S.) ने कहा नहीं, बल्कि मुझे पता चला है कि तुम सख़्त बीमार हो, इसलिए तुम्हारी बिमार पुर्सी के लिए आया हूँ। यह सुनते ही बुढ़िया के मन पर बहुत प्रभाव हुआ और वह बोल उठी! आप निस्संदेह सच्चे नबी हैं। और इसने तुरंत इस्लाम धर्म क़ुबूल कर लिया। मैंने यह कहानी जब अपनी दादी माँ को सुनाई। वह झट कहने लगीं, मुझे लगता है, वह बहुत अच्छा आदमी था। तुमनें बहुत अच्छी कहानीं सुनाई।

अब मुझे इन कहानियों में मज़ा आने लगा। मैं हर रोज़ कम से कम एक कहानी, जरुर पढ़ती। इस प्रकार मैंने कई कहानियाँ पढ़ीं और फ़िर उस पुस्तक को अलमारी में फेंक दिया। अन्य नव जवान लड़कियों की तरह मैं हर रोज़ नये-नये फ़ैशन (fashion) करती। मेरी मानसिक स्थिती यह थी कि मैं, मुसलमानों को गंदे-लोग और बुरे लोग समझती और मन ही मन में, उनसे नफ़रत करती थी।

स्टूडेन्ट एक्सचेन्ज प्रोग्राम (Student Exchange Programme)

स्टूडेन्ट एक्सचेन्ज प्रोग्राम (Student Exchange Programme) में मुझे मेरे मेरिट (merit) के कारण मासको (Moscow) में डाक्टरी पढ़ने के लिए वजीफ़ा(शिष्यवृत्ती) मिला। इस प्रोग्राम में हम 7-हिन्दुस्तानी लड़कियाँ थीं। हम ने पहले साल रूसी भाषा सीखी। रूसी समाज में कई अच्छाइयाँ हैं। उदाहरण के लिए वह आप को बिना पैसे लिए रूसी भाषा सिखादेंगे, ताकी तुम अपनी पढ़ाई पूरी कर सको। वह बहुत ईमानदार होते हैं। मेहमानों की आव-भगत करते हैं। वे बड़े दिल के लोग हैं। दूसरों की मदद करके खुश होते हैं। लेकिन उनका आचरण बुरा है। मसलन कोई लड़की अपने मित्र (boy friend) को अपने माता-पिता के सामने अपने घर ला सकती है।

इस्लाम धर्म की कुछ और झलकियाँ

मेडिकल कालेज के हॉस्टल में मेरा अन्य दूसरे देशों के छात्रों के साथ भी मेल-मिलाप बढ़ा। इन में अरबी छात्राऐं भी थीं। मैं इनके सामाजिक जीवन से बहुत प्रभावित हुई। इससे मेरी इस्लाम धर्म की ओर दिलचस्पी बढी। जब हम तीसरे-साल में थे, नाईजीरिया के एक छात्र (अब्दुल्लाह सानी) ने हमें बताया की एक मीटिंग होने वाली है जिसमें मस्जिद के इमाम साहब

पर्दे के पीछे से भाषण देंगें। जैसा कि मैं बता चुकी हूँ मैं अरबी लड़कियों से प्रभावित थी। इसलिए मैंने इस मिटिंग में और बाद की कई मिटिंगों में भाग लिया।

इसी समय स्टूडेन्ट एक्सचेन्ज प्रोग्राम(Student Exchange Programme) के द्वारा शकील साहब भी रूस के शहर ताशक़ॅन्द (Tashkend) आ चुके थे। उन्होंने मुझे इंग्लिश भाषा में अनुवादित कुराने-पाक और कुछ दूसरी इस्लामिक पुस्तकें भेजीं। वह मुझे फ़ोन पर भी इस्लाम का परिचय कराते रहते।

मेरी मॉं ने हिन्दू धर्म की सारी पुस्तकें मेरे सामान में रखदीं थीं। मेरे पढ़ाई के टेबल पर हिन्दू धार्मिक पुस्तकों के साथ-साथ क़ुरान भी खुला रहता। मैं रोज़ दोनों पुस्तकें पढ़ती। जब मैं क़ुरान पढ़ती तब मैं अपने आप पर काबू न रख पाती और लगातार रोने लग जाती।

मैंने डॉक्टर साहिबा से पूछा रोने का कारण क्या था। उनहोंने कहा जब मैं उन आयात को पढ़ती जिसमें कहा जाता की तुम को नर्क (Hell) में फेंक दिया जाएगा। तुम दोज़ख(नर्क) की आग में जलोगे। तब मैं बेइखतियार रो पड़ती क्यंकि उसका प्रभाव मेरे दिल और दिमाग पर होता था।

एक दिलचस्प(मन मोहक) घटना

एक दिन मैं कॉलेज की एक मिटिंग के बाद अपने हॉस्टल जा रही थी। मैंनें बहुत दिलकश और खूबसूरत इण्डियन कपड़े पहन रखे थे। पंजाबी जूते पहने थे। हाथों में रंग-बिरंगी चूड़ियॉं पहन रखी थीं। रास्तें में एक बूढ़ी औरत अपनी बिल्ली के साथ सड़क के किनारे बैठी थी। उसने मुझे बुलाया और मेरा हाथ थाम कर कहने लगी। तुम कितनी प्यारी गुड़िया लगती हो। मुझे हिन्दी पोशाक और इण्डियन लोगों से प्रेम है। मुझे इण्डियन फ़िल्मों के हीरो भी बहुत पसंन्द हैं। क्यूँ न तुम मेरे साथ मेरे घर में रहा करो। मैं अकेली रहती हूँ। मैंने क्षमा चाहते हुए कहा, मेरी पढाई में (बाधा) खलल पड़ेगा। उसने इसरार (आग्रह) किया कि मैं उसके साथ कम से कम एक कप चाय पियूँ। मैं उसके घर गई। यह बूढ़ी यहूदी औरत उस घर की मालिका थी और अकेले जीवन बिता रही थी। वह मुझ से बड़े प्रेम से मिली। और मेरी बहुत आव-भगत करने लगी। क्यूँकि हास्टेल में म्युज़िक और डॉन्स के कारण बहुत

हंगामा रहता था, मैं अपनी पढ़ाई पर ध्यान देना चाहती थी। इसलियें कुछ दिन बाद मैं उसके घर रहने लगी।

मकान मालिका की टिप्पणी

जैसा कि मैं बता चुकी हूँ। मेरे डेस्क (desk) पर हिन्दू धार्मिक पुस्तकें और कुरान हमेशा खुली रहतीं और मैं दोनों को रोज़ाना पढ़ा करती थी। एक दिन मेरी बूढ़ी मकान मालिका ने कहा, जब भी तुम यह पुस्तक (क़ुरान) पढ़ती हो, तुम लगातार रोती रहती हो, तुम्हें यह पुस्तक नहीं पढ़नी चाहिए। क्यूँकि यह तुम्हे रोज़ाना रुलाती है, वह यह भी कहती कि, मैं अपने जीवन में प्यार-इश्क़ के लिए भी समय दूँ। किसी दोस्त (boy friend) के साथ समय बिताऊँ। मैंने उससे कहा कि मैं केवल पढ़ाई पर ध्यान देना चाहती हूँ। यही कारण था की मैं यहाँ रहने आ गई।

इस प्रकार नया साल आगया। मेरी मकान मालिका ने मुझ से कहा कि मैं जीन्स (jeans) और टोप पहनूँ। वह मुझे मासको के पब्लिक स्काअर (Public Square) लेगई, जहाँ नया साल बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था। जब नया साल शुरू हुआ, उसने मुझे एक युवक के साथ डॉन्स करने को कहा। मैंने कह दिया कि मुझे डॉन्स करना नहीं आता। बुढ़िया ने मुझे खुश करने के लिए, खुद ही उस युवक के साथ (dance) करने लगी। सच यह है कि मेरी मालिका मकान, जब तक मैं उसके साथ रही मेरा बहुत ध्यान रखती।

कुदरती कशिश

जैसा कि मैं बता चुकी हूँ, शकील साहब से मेरी मुलाक़ात (Moscow Cultural Center) में हुइ थी। हम दानों ही ऊँचे कद के शालीन और आकर्षक थे। और एक दूसरे को दिल ही दिल में पसन्द करने लगे। और हम दोनों का परस्पर सम्पर्क बना रहा, यहाँ तक कि शकील साहब ताशकन्द आगए। और मुझे फ़ोन पर इस्लाम की दावत देते रहे। मोस्को में 3-साल गुज़ारने के बाद मैं रेल के ज़रिये ताशकन्द गई। वहाँ तक रेल से पहुँचने के लिए 3-दिन और 3-रातें लगतीं हैं। शकील साहब ने मुझे शादी का ऑफ़र दिया। मैंने यह कह कर इनकार कर दिया कि मैं हिन्दू धर्म नहीं त्याग सकती। उन्होंने मुझे एक निशा(Nisha) नामी महिला से मिलने को कहा,

जिसका ताअल्लुक़ मद्रास(चिन्नई) शहर से था। वह इस्लाम धर्म क़बूल कर चुकी थी और एक सीरियन (Syrian) आदमी से विवाह कर चुकी थी।

निशा के घर पर एक बहुत लँम्बी मिटिंग हुई। निशा ने मुझे समझाया कि मुसलमान से विवाह करने के लिए तुम इस्लाम धर्म अपनालो। वरना तुम्हारे माता-पिता तुम्हारी शादी किसी हिन्दू के साथ कर देंगे। मैंने कहा कि मैं दोनो धर्मों (इसलाम और हिन्दू धर्म) का पालन करूँगी। इस पर शकील साहब राज़ी हो गये। और मुझे इस्लाम धर्म क़ुबूल करने पर मजबूर नहीं किया।

शादी की रस्म

हम ताशक़न्द की बड़ी मस्जिद के ईमाम-साहब के पास निकाह के लिये गऐ। उन्होंने एक हिन्दू और एक मुसलमान के बीच निकाह कराने से इन्कार कर दिया। अब मुझे शकील साहब ने बताया कि इस शादी के लिए कलमा पढ़ कर इस्लाम-धर्म स्वीकार करना ज़रूरी है। मैं मान गई। फिर हम दोनों (ताशक़न्द की) एक छोटी मस्जिद के ईमाम-साहब के पास गए। ईमाम-साहब ने मुझे कलिमा-शरीफ़ पढ़ाया। मैं यह कलमा अरबी भाषा में पहले से जानती थी, लेकिन मुझे इसका अर्थ मालूम नहीं था। इस प्रकार मैंने अल्लाह की कृपा से कई छात्रों के बीच इस्लाम धर्म क़ुबूल कर लिया। अलहम्दुलिल्लाह।

शादी का प्रवचन (खुतबा)

यह इमाम-साहब बहुत सादा, मुत्तकी और मुखलिस (सरल स्वभावी) आदमी थे। वह कहने लगे, अब आप हमारी इस्लामी बहन बन चुकी हैं। आप ने अभी-अभी कलिमा शरीफ़ पढ़ा है, जिसमें केवल एक खुदा की इबादत का वचन किया है। इस प्रकार आप को आने वाले जीवन भर में कभी भी किसी मूर्ति की पूजा नहीं करनी चाहिए। यह आप ने जीवन का सबसे महत्वपूर्ण निर्णय लिया है। तुम्हारे इस निर्णय से न केवल मस्जिद में उपस्थित लोग खुश हैं बल्कि आसमानों में भी तुम्हारे लिए ईद मनाइ जा रही है। इस ईद में फ़रिश्ते एक-दूसरे से कह रहे हैं की एक अत्याधिक पढ़ी-लिखी महिला ने अपने जीवन का सबसे अहम फ़ैसला किया है। आसमानों में हर ओर तुम्हारा ही चर्चा हो रहा है। इमाम-साहब की इस तक़रीर (प्रवचन) ने

मेरे मन पर बड़ा गहरा प्रभाव ड़ाला। मैंने जीवन में पहली बार इस्लाम र्धम को दिलो-जान से मान लिया।

जब डॉक्टर साहिबा यह कहानी सुना रहीं थीं। उनकी आखों से ऑसू टपक रहे थे। यह यादें उनकी जीवन की सबसे बड़ी पूँजी थी जिसके कारण उनकी जीवन धारा ही बदल गई। वह साथ ही साथ अल्लाह का शुक्र अदा कर रहीं थीं। लेकिन अल्लाह के शुक्र के एहसास से रोना न थमता था।

निकाह नामा (विवाह संधि)

इमाम-साहब ने शकील साहब की ओर देखते हुए कहा कि निकह नामा लिखने से पूर्व आप को अपनी होने वाली पत्नी का महर (स्त्री-धन) तय (ठहराना) करना चाहिए। शकील साहब ने कहा मैं एक विद्यार्थी हूँ मेरे पास 200 डॉलर हैं। इमाम साहब ने कहा कि यह नाकाफ़ी हैं। शकील साहब ने अपने मित्रों से उधार लेकर उस में बढ़ौती की। लेकिन इमाम-साहब ने कहा की अभी भी कम हैं। आप की पत्नी एक डॉकटर हैं, इनका समाज में ऊँचा स्थान है, आप को इनकी हैसियत के अनुसार महर देना होगा। शकील साहब ने कहा कि मैं अपने परिवार से उधार लेकर उनको कई हज़ार डालर महर देने को राज़ी हूँ। डॉक्टर साहिबा कहने लगीं मैं हैरान यह देख कर रह गई कि इस्लाम औरत के हुक़ूक (अधिकारों) की किस प्रकार सुरक्षा प्रदान करता है। इससे मेरे मन में इस्लाम के प्रति इज्ज़त और बढ़ गई। शकील साहब ने इमाम साहब से कहा कि निकाह-नामे में कई हज़ार डॉलर महर के लिखदें। मैं वचन देता हूँ कि यह महर मैं उन्हें दे दूँगा। इमाम-साहब ने कहा लिखने की कोइ ज़रूरत नहीं जो तुम कह रहे हो, अल्लाह उसको सुन रहा है। और अल्लाह की गवाही काफी है। इससे मेरा ईमान और बढ़ गया। आखिरकार निकाह नामा लिखा दिया गया। मस्जिद में खुशी की लहर दौड़ गई। चन्द दिनों के बाद मैं अपनी रूसी मित्र के साथ मास्को आ गई।

इस्लामी शिक्षा और अनुसरण

मॉस्को में अब्दुल्लाह सानी साहब छात्रों की मस्जिद के ईमाम थे। वह बहुत काबिल और मुत्तक़ी (God fearing) आदमी थे। वह औरतों और मर्दों में तालीम और सद-व्यवहार का प्रचार करते। वह हमारे प्रश्नों का स्पष्ठ और दलीलों(logic) से उत्तर देते। मैंने उन से बढकर परहेज़गार(सय्यमी) आदमी

अपने जीवन भर में नहीं देखा। इस प्रकार मेरी तालीम आसानी से हुई। इस मस्जिद का वातावरण बहुत अच्छा था। इन्हीं दिनों शकील साहब अपनी पढ़ाई पूरी करके मास्को चले आए। अल्लाह की कृपा से उन्हें नेर्चस कंपनी आफ़ ब्रिटेन (Natures Company of Britain) में इन्जीनियर का पद मिल गया। हम दोनों विवाहित छात्रों के हॉस्टेल (hostel) में चले गए।

विद्यार्थी जीवन-काल

मैं विद्या अर्चन(तालिबे-इल्मी) के दौर की बड़ी क़दर करती हूँ, क्यूँकि हर देश और हर ज़माने के छात्र बुनयादी तौर पर ईमानदार और खुले मन के मालिक होते हैं। और सत्य की तलाश में रहते हैं। वह एक-दूसरे के विचारों को सुकून से सुनते हैं। दूसरों के विचारों से सहमत ना होते हुए भी सहनशीलता से पेश आते हैं। जब कि आम सुसायटी में हालात इसके विरूद्ध होते हैं। जिसके कारण अक्सर सुसायटी में दंगा फ़साद होता है। मैं उन सब छात्रों की शुक्र गुज़ार हूँ जिनकी कोशिशों से मेरा जीवन सँवर गया। दरअसल मैं जो कुछ भी आज हूँ वह सब अल्लाह की कृपा और छात्रों की कोशिशों की वजह से हूँ। इसीलिए मैं हर देश और हर(युग) ज़माने के छात्रों को सलाम(प्रणाम) पेश करती हूँ। और दुआ करतीं हूँ कि वह इसी प्रकार सत्य की तलाश में रहें।

माता पिता की प्रतिर्किया

मैंने फ़ोन के माध्यम से अपनी माता जी को इस्लाम क़ुबूल करने और विवाह करने के बारे में सूचना दी। वह कहने लगीं तुम पर किसी ने जादू कर दिया है। तुम अपना मानसिक संतुलन खो बैठी हो। याद रखना तुम दोनों अगर अमेरिका या आस्ट्रेलिया भी चले जाओ हम तुम्हारा पीछा करेंगे और तुम दोनों की हत्या कर देंगे। तुम ने अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल की है। मेरी राय मानों तो तुम उसी शहर में रेल के सामने जाकर खुदकुशी (आत्म हत्या) करलो। ताकि मेरी इज्ज़त बच जाए। मैं लोगों से कहूँगी की मेरी बेटी मर चुकी है। यह भी याद रखना जीवन भर मुझे अपना मुँह ना दिखाना।

यह सब बातें सुन कर मेरे दिल व दिमाग़ को बहुत ठेस पहुंची। मुझे डरावने सपने आने लगे। मेरी पढ़ाई पर भी इस मानसिक दबाव से बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा।

क़ानूनी कठिनाईयॉं

हम सुनते रहते थे Engagement is fine but marriage is a headache. मंगनी तो भली चीज़ है, लेकिन शादी दरदे सर से कम नहीं है। हम दोनों इण्डियन एमबेसी (Indian Embassy) मॉस्को गये ताकि हमारी शादी की इण्डियन क़ानून के अनुसार भी मान्यता प्राप्त हो जाए। लेकिन उन्होंने साफ़ इन्कार करदिया। किसी भले मित्र ने हमें सलाह दी कि अगर हमें बच्चा हो जाए तब तो इण्डियन एमबेसी इन्कार नहीं कर सकेगी। अल्लाह ने हमें मॉस्को में ही पहला बच्चा प्रदान किया। हमने अपने बच्चे की पैदाइश का रूसी क़ानून के अनुसार पंजीकरण करा दिया। अब रूसी हुकूमत ने इण्डियन एमबेसी को लिखा कि यह शादी और बच्चा हमारे कानून के अनुसार हुआ है। इन दोनों सत्य का इण्डियन एमबेसी को इन्कार नहीं करना चाहिए। बहुत कोशिश के बाद इण्डियन एमबेसी नें हमें हमारे बच्चे का इण्डियन पासर्पोट दे दिया। मेरी डॉक्टरी की पढ़ाई भी पूरी हो चुकी थी। और हम दोनों अपने प्यारे वतन भारत वापस आ गए।

पूरे परिवार के लिए रहमत का कारण

हज़रत मोहम्मद (S.A.S.) को प्रचार के लिए जो पहला हुकुम मिला वह यह था।

आयतः وَأَنذِرْ عَشِيرَتَكَ الْأَقْرَبِينَ ﴿٢١٤﴾

यानी अपने आत्म परिवार वालों को स्मरण कराते रहें। (सूरह शोअरा आयत 214)

सच तो यह है कि यही हुक्म सब पैगंबरों को मिला था। इस में बहुत बड़ी हिकमत है। मैंने भी अल्लाह के कहने के अनुसार अपने पति को सलात व सोम (नमाज़ व रोज़ा) की पाबन्दी की तलख़ीन (तंबी) की। अल्लाह की कृपा से वह बेहतर मुसलमान और नमाज़ को जमात के साथ पढ़ने में और सर्तक हो गए। मॉस्को में हमारा पड़ोसी ऊँची आवाज़ से क़ुराने-करीम की तिलावत (पढना) करता जो हमें भी सुनाई देती। मैंने अपने पति से आग्रह किया कि वे भी इस प्रकार अच्छी आवाज़ से क़िरअत(लय से पढ़ना) सीखें। समय के साथ हम अच्छे मुसलमान बन गए।

जब हम इण्डिया आये तो मैंने देखा कि मेरे ससुराल के लोग बहुत धनवान थे, लेकिन इस्लाम पर चलने में बहुत कमज़ोर थे। अक्सर धनवान घरानों का यही हाल था। यहाँ तक कि घरों में शराब भी पीते। मैंने पूरे साहस और सन्जीदगी (तन्मयता) से उन्हें इस्लामी तालिमात की याद देहानी(स्मरण) कराई।

मेरे अच्छे मेरिट (merit) के कारण मुझे लोकल अस्पताल में काम मिल गया। मैंने अपने वेतन से पैसे बचाने शुरू किए। अगले ही साल मैंने मेरे पति और मेरी सास साहिबा को अपने पैसों से हज(तीर्थ यात्रा-मक्का-मदीना) कराया। मेरे ससुराल वालों ने कहा हमने हज के बारे में कभी सोचा भी नहीं था। खरबूज़े को देख कर खरबूजा रंग पकड़ता है। अगले साल मेरे कई रिशतेदारों ने अल्लाह की कृपा से हज किया।

अल्लाह की मदद

जब हम हज से लौटे, हम अपने साथ ज़म-ज़म(पवित्र-जल मक्के के प्राचीन-झरने का) भी लाए। मेरे एक बहुत ही क़रीबी रिश्तेदार ने भी ज़म-ज़म माँगा। मैंने उनसे कहा ज़म-ज़म जब दूँगी, अगर ये वचन दो कि शराब पीना छोड़ दोगे। उन्होंने वादा(प्रण) किया फ़िर ज़म-ज़म पिया। अल्लाह की कृपा से उन्होंने शराब पीनी छोड़ दी। मैं अल्लाह की शुक्र गुज़ार हूँ की उसने मुझे इसका (माध्यम) ज़रिया बनाया। हमारे पूरे परिवार में मैं अकेली ही पर्दे का पालन करती हूँ। लेकिन अब धीरे-धीरे समाज मे पर्दे का रिवाज बढ़ रहा है।

समाज के लिए बाईसे रहमत (कृपा कारण)

मैं घर से बाहर और अस्पताल में पर्दे का पालन करती हूँ। मेरे अस्पताल के एडमिनिसट्रेटर साहब ने मुझे कहा कि इस लिबास(पहनावे) के कारण अनदेखे मसाइल(समस्यायें) पैदा होंगे। मैंने उनहें यक़ीन दिलाया की यह मेरे लिए और अस्पताल के माहोल के लिए रहमत सिद्ध होगा। अल्लाह का मुझ पर बड़ा एहसान है की हर कोई मुझे इज्ज़त की निगाह से देखता है। मेरी इस इज्ज़त अफज़ाई के कारण और कोशिशों से कई औरतों ने इस्लाम क़ुबूल कर लिया है। मैं इन नये मुसलमानों को अपने घर में तालीम देती हूँ। और मैने इनमें से कुछ-एक की शादियों का इन्तेज़ाम भी किया है। मेरे घर में हफ्ता वार तालीम में लोगों की संख्या दिन ब दिन बढ रही है।

इस्लामी कुतुब (पुस्तकें)

हमारे हज के सफ़र के दौरान में हमें डॉ॰ इमतियाज़ अहमद साहब की कुछ पुस्तकें दी गईं। एक दिन मेरे पति मस्जिदे नबवी शरीफ़ में बैठे, इनमें से एक पुस्तक पढ़ रहे थे। एक नाइजीरियन भाई ने मेरे पति से कहा, क्या मैं यह पुस्तक देख सकता हूँ , जिसको तुम यूँ डूब कर पढ़ रहे हो। वह साहब कुछ देर पुस्तक पढ़ने के बाद कहने लगे, कृप्या यह पुस्तक मुझे देदें। मैं और मेरा परिवार आप को दुआऐं देगा। शकील साहब ने वह पुस्तक उनको दे दी। और बाकी पुस्तकें हम इण्डिया ले आए। अब घर में हमारा यह मामूल(नियम) है कि हमारा एक बेटा इस पुस्तक को पढ़ता है और हम सब मिल कर सुनते हैं। जब हम (नये मुसलमानों की कहानियाँ वाली पुस्तक) सुनते हैं, तब अकसर रोते हैं। यह कहानियाँ हम सब के लिए बहुत सबक़ आमोज़ हैं।

एक अनमोल भेंट

मुझे हिन्दुस्तानी सरकार (Indian Government) ने 2009 में हज पर डयूटी के लिए मक्का मुकररमा भेजा। मैं यहाँ लग-भग 2-महीनों से रह रही हूँ। इस बीच कई उमरे(काबा के तथा सफा-मरवा पहाड़ियों के बीच फेरे करना 7-7 बार) अदा किए हैं। विभिन्न देशों के मुसलमानों से मिल कर बहुत खुशी मिलती है। मेरी ख़ुश किस्मती(सौभाग्य) है कि इस साल अल्लाह ने मुझे हाजियों की सेवा करने का अवसर प्रदान किया। अल्लाह से दुआ है की वह मुझे यहाँ बार-बार बुलाए और इसी प्रकार हाजियों की सेवा करने की तौफीक़ (सदबुद्धि) दे आमीन, सुम्म आमीन।

***

- (मरयम और हिन्दु लेडी डॉक्टर की कहानी का अनुवाद इं-मुहम्मद ज़ुबेर हुसैन ने किया। इस में जनाब हाफ़िज़ मुहम्मद अशफ़ाक़, इं इक़बाल अहमद क़ुरैशी, डॉ-शकील फ़ारूकी, ने बहुत मदद की। अल्लाह हमारी इस मामूली कोशिश को कुबूल करे।)

क़ुरआनी आयात

اَللّٰهُ نَزَّلَ اَحْسَنَ الْحَدِيْثِ كِتٰبًا مُّتَشَابِهًا مَّثَانِيَ ۖ تَقْشَعِرُّ مِنْهُ جُلُوْدُ الَّذِيْنَ يَخْشَوْنَ
رَبَّهُمْ ۚ ثُمَّ تَلِيْنُ جُلُوْدُهُمْ وَ قُلُوْبُهُمْ اِلٰى ذِكْرِ اللّٰهِ ؕ ذٰلِكَ هُدَى اللّٰهِ يَهْدِيْ بِهٖ مَنْ
يَّشَآءُ ؕ وَ مَنْ يُّضْلِلِ اللّٰهُ فَمَا لَهٗ مِنْ هَادٍ ﴿۲۳﴾

''अल्लाह ने निहायत अच्छी बातें नाज़िल फ़रमायी हैं (यानी) किताब (जिसकी आयतें आपस में) मिलती-जुलती (हैं) और दोहरायी जाती (हैं) जो लोग अपने परवरदिगार से डरते हैं, उनके बदन के (उस से) रौंगटे खड़े हो जातें हैं फिर उनके बदन और नर्म (होकर खुदा कि याद की तरफ (मुतवजह) हो जाते हैं। यही खुदा कि हिदायत है, वह इससे जिसको चाहता है, हिदायत देता है और जिसको खुदा गुमराह करे, उसको कोई हिदायत देने वाला नहीं।'' (39:23)

وَ اِذَا سَمِعُوْا مَاۤ اُنْزِلَ اِلَى الرَّسُوْلِ تَرٰۤى اَعْيُنَهُمْ تَفِيْضُ مِنَ الدَّمْعِ مِمَّا عَرَفُوْا مِنَ
الْحَقِّ ۚ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَاۤ اٰمَنَّا فَاكْتُبْنَا مَعَ الشّٰهِدِيْنَ ﴿۸۳﴾ وَ مَا لَنَا لَا نُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَ مَا
جَآءَنَا مِنَ الْحَقِّ ۙ وَ نَطْمَعُ اَنْ يُّدْخِلَنَا رَبُّنَا مَعَ الْقَوْمِ الصّٰلِحِيْنَ ﴿۸۴﴾ فَاَثَابَهُمُ اللّٰهُ بِمَا
قَالُوْا جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ؕ وَ ذٰلِكَ جَزَآءُ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۸۵﴾

''और जब इस (किताब) को सुनते हैं, जो पैग़म्बर (सल्ल॰) पर नाज़िल हुई तो तुम देखते हो कि उनकी आँखों में आँसू जारी हो जाते हैं, इस लिए कि उन्होंने हक बात पहचान ली और वे अर्ज़ करते है कि ऐ परवरदिगार! हम इमान लाए, तू हम को मानने वालों में लिख ले। और हमें क्या हुआ है कि खुदा पर और हक बात पर, जो हमारे पास आयी है ईमान न लाए। और हम उम्मीद रखते हैं कि परवरदिगार हम को नेक बन्दों के साथ बहिश्त में दाखिल करेगा। तो ख़ुदा ने उनको इस कहने के बदले (बहिश्त के) बाग़ अता फ़रमाए, जिनके नीचे नहरें बह रही हैं, ये हमेशा उनमें रहेंगे और भले लोगों का यही बदला है।'' (5 : 83-85)

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَ اٰمِنُوْا بِرَسُوْلِهٖ يُؤْتِكُمْ كِفْلَيْنِ مِنْ رَّحْمَتِهٖ وَ يَجْعَلْ لَّكُمْ نُوْرًا تَمْشُوْنَ بِهٖ وَ يَغْفِرْ لَكُمْ ؕ وَ اللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۚ﴿۲۸﴾

''मोमिनो! ख़ुदा से डरो और उसके पैग़म्बर पर इमान लाओ, वह तुम्हें अपनी रहमत से दो गुना बदला अता फ़रमाएगा और तुम्हारे लिए रोशनी कर देगा, जिसमें चलोगे और तुम को बख्श देगा और ख़ुदा बख़्शने वाला मेहरबान है।''(57:28)

كِتٰبٌ اَنْزَلْنٰهُ اِلَيْكَ مُبٰرَكٌ لِّيَدَّبَّرُوْۤا اٰيٰتِهٖ وَ لِيَتَذَكَّرَ اُولُوا الْاَلْبَابِ ﴿۲۹﴾

''(यह) किताब जो हमने तुम पर नाज़िल की है, बरकत वाली है, ताकि लोग उसकी आयतों में ग़ौर करें और ताकि अक्ल वाले नसीहत पकड़ें।'' (38:29)

قُلْ هُوَ لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا هُدًى وَّ شِفَآءٌ ؕ وَ الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ فِيْۤ اٰذَانِهِمْ وَقْرٌ وَّ هُوَ عَلَيْهِمْ عَمًى ؕ اُولٰٓئِكَ يُنَادَوْنَ مِنْ مَّكَانٍۭ بَعِيْدٍ ﴿۴۴﴾

''कह दो कि जो इमान लाते हैं, उनके लिये (यह) हिदायत और शिफ़ा है और जो इमान नहीं लाते, उनके कानों में बोझ (यानी बहरापन) है और यह उनके हक़ में अंधापन (की वजह) है। बोझ की वजह से उनको (गोया) दूर जगहा से आवाज़ दी जाती है।'' (41:44)

***

कुछ पत्र प्रशंसको के

1 इम्तियाज़ साहब, मेरा नाम शहनाज़ बेगम है। मैं ब्रिटिश इन्डियन मुस्लिम हूँ । मेरा जन्म और संस्कार ब्रिटेन मे ही हुआ। आज तक मुझे इंडिया या किसी इस्लामिक मुल्क (देश) मे जाने का अवसर नहीं मिला। मुझे इस्लाम समझने में मुश्किलें आ रही हैं, जब्कि तीन साल की उम्र से ही इस्लाम के लिय ट्युशन ले रही हूँ । आप की किताबों को मैंने बड़ी उप्योगी और मन मोहक पाया । ये किताबें मेरे भाई शाम के सफ़र के दौरान लाए थे । इन किताबों की भाषा बिल्कुल सरल और इनको समझना बिल्कुल आसान है। यह इसलिए भी है कि आप अमरिकी हैं। और आपके लिखने का ढंग मेरे लिए पर्याप्त है। इस वक़्त मैं क़ानून की पढ़ाई कर रही हूँ। मेरी आपसे विनती है कि आप मुझे अपनी लिखी किताबें भेजने की कृपा करें – शहनाज़ ब्रिटानिया, नवम्बर 2001

2 मै एम-बी-ए हूँ और एक लेक्चरार की हैसियत से काम कर रहा हूँ । मैंने अपना हिंदू धर्म त्याग कर इस्लाम कुबूल कर लिया है। मैंने आप की तीनों किताबें पढ़ी हैं और मैंने इन किताबों को बहुत उपयोगी पाया और आपके लिखने की शैली को प्रभावशाली पाया। आप से मेरी विनती है और मेरी मनशा है कि आप अपने इस सद्कर्म को सदा जारी रखें । – मुहम्मद ज़ुबैर इन्डिया, 28 मई 2003

3 जैसे ही मैंने आप की किताब "हमने इस्लाम कैसे क़ुबूल किया?" पढ़नी शुरु करी, उसे आखरी पन्ने तक पढ़े बग़ैर न छोड सका । यह किताब न सिर्फ़ ग़ैर मुस्लिम के लिए फ़ायदेमंद है बल्कि मुसलमानों के ईमान को भी शक्ति देती है और उनको असरदार प्रचार के तरीकेकार से भी अवगत कराती है । – जाफ़र क़ासिम, जिम्बाबवे, मई 2002

4 मैंने आपकी किताब "हमने इस्लाम कैसे क़ुबूल किया?" पढ़ी और उसे बहुत ही आकर्षक पाया। मैं सिर्फ़ यह कहूंगी के अल्लाह तआला आपको लम्बी उम्र प्रदान करे और हम नौजवानों को आपके दिखाए हुए रास्ते पर चलने की सद्बुद्धी प्रदान करें, आमीन – महामा, धाना अफ्रीका, 14 सितम्बर 2001